श्री जीवन-श्रेयस्कर-ग्रन्थमाला पुष्प २९ वाँ

विनयचन्द्र-आनन्दघन-देवचन्द्र जी कृत

चौबीसी।

卐

प्रकाशक

छोटेलाल यति,
जीवन-श्रेयस्कर-ग्रन्थमाला
बीकानेर।

श्रीमान् सेठ इन्द्रचन्दजी गेलड़ा
मद्रास की ओर से सप्रेम भेंट

प्रथमावृत्ति
२०००

सन् १९३९
विक्रमार्क १९९६
श्री वीर सम्वत् २४६५

मूल्य
सदुपयोग

श्री जीवन-श्रेयस्कर-ग्रन्थमाला पुष्प २९ वाँ

विनयचन्द्र-आनन्दघन-देवचन्द्र जी कृत

चौबीसी

प्रकाशक :

छोटेलाल यति,

जीवन-श्रेयस्कर-ग्रन्थमाला,

बीकानेर।

प्रथमावृत्ति २०००

सन् १९३९
विक्रमाब्द १९९६
श्री वीर सम्वत् २४६५

मूल्य ०-४-०

प्रकाशक :

...लाल यति,

जीवन श्रेयस्कर ग्रन्थमाला,—बीकानेर

हिन्दी पुस्तकें	मूल्य	गुजराती पुस्तके	मू.
नंदनमणीहार	-)	राजकोट व्याख्यान सं.	२।)
मेघकुमार	।-	जामनगर व्या. संग्रह	२॥)
चूलणीपिता	-)	जवाहिर ज्योति	।≡)
मातृपितृसेवा	-)	धर्म अने धर्मनायक	।=)
परिचय (दयादान)	≡)	सत्यमूर्ति हरिश्चन्द्र	॥=)
मिलके वस्त्र और जैनधर्म	-)	अनाथीमुनि	।=)
जिनरिख जिनपाल	०)॥।	सकडाल	≡)
सामायक और धर्मोपकरण	-)	ब्रह्मचारिणी	।=)
आनन्दघन देवचन्द्र चौवीसी	।)	जीवन–श्रेयस्कर–प्रार्थना	-)

मुद्रक :

रमणीकलाल पी. कोठारी

धी वीरविजय प्री. प्रेस

रतनपोळ : अमदावाद.

ॐ

श्री विनयचन्द-चौबीसी।



दो०-कर्म्म कलंक निवारने, थया सिद्ध महाराज।
मन बचन काये करी, वन्दूँ तेने आज॥

१-श्रीऋषभजिन-स्तवन

(उमादे भटियाणी-यह देशी)

श्री आदेश्वर स्वामी हो,
प्रणमूं सिरनामी तुम भणी।
प्रभु अंतरजामी आप,
मोपर म्हेर करीजे हो,
मेटी जे चिन्ता मनतणी॥
म्हारा काटो पुराकृत पाप,
श्री आदीश्वर स्वामी हो ॥टेर॥१॥

आदि धरम की कीधी हो,
भर्तक्षेत्र सर्पणी काल में।
प्रभु जुगला धरम निवार,
पहिला नरवर मुनीवर हो।
तीर्थंकर जिनहुआ केवली,
प्रभु तीरथ थाप्या चार ॥श्री०॥२॥

मा "मरुदेवी" थारी हो,
गज हौदे मुक्ति पधारिया।
तुम जनम्या हो प्रमाण,
पिता "नाभिम्हाराजा" हो।
भव देव तणो करी नर थया,
प्रभु पाम्यां पद निरवाण ॥श्री०॥३॥

भरतादिक सो नंदन हो,
बेपुत्री "ब्राह्मी" "सुंदरी"।
प्रभु ए थारां अंगजात,
सघला केवल पाया हो।

समाया अविचल जोत में,
   कांइ त्रिभुवन में विख्यात ॥श्री०॥४॥

इत्यादिक बहु तारथा हो,
   जिन कुल प्रभु तुम ऊपन्या।
कांइ आगम में अधिकार,
   और असंख्य तारथा हो।
उद्धारथा सेवक आपरा,
   प्रभु सरणा ई आधार ॥श्री०॥५॥

अशरण शरण कहीजे जो,
   प्रभु विरद विचारो साहिबा।
कांइ कहो गरीब निवाज,
   शरण तुम्हारी आयो हो।
हूँ चाकर जिन चरना तणो,
   म्हारी सुणिये अरज अवाज ॥श्री०॥६॥

तू करुणाकर ठाकुर हो,
   प्रभु धरम दिवाकर जग गुरु।

कांइ भव दुःख दुष्कृत टाल,
"विनयचंद" ने आपो हो।
प्रभु निजगुण संपतशाश्वती,
प्रभु दीनानाथदयाल ॥श्री०॥७॥

२-श्री अजितजिन-स्तवन

(कुविसन मारग माथे रे धिग-यह देशी)

श्री जिन अजित, नमूं जयकारी,
तुम देवन को देवजी,
जयशत्रु राजा ने विजया राणी को,
आतमजात तुमेव जी।
श्री जिन अजित नमूं जयकारी ॥टेर॥१॥

दूजा देव अनेरा जगमें,
ते मुझ दाय न आवेजी।
तह मन तह चित्त हमने,
तूहिज अधिक सुहावेजी ॥श्री॥२॥

सेव्या देव घणा भव भव में,
तो पिण गर्ज न सारी जी।
अब के श्री जिनराज मिल्यो तू,
पूरण परउपकारी जी ॥श्री॥३॥

त्रिभुवन में जस उज्ज्वल तेरो,
फैल रह्यो जग जाने जी।
बंदनीक पुजनीक सकल को,
आगम यम बखाने जी ॥श्री॥४॥

तू जग जीवन अंतरजामी,
प्राण अधार पियारो जी।
सबविधि लायक संतसहायक,
भक्त वत्सल ब्रत थारो जी ॥श्री॥५॥

अष्ट सिद्धि नव निद्धि को दाता,
तो सम और न कोई जी।
बधे तेज सेवक को दिन-दिन,
जेथतेथ जय होई जी ॥श्री॥६॥

अनंत-ज्ञान-दर्शन संपति ले,
ईश भयो अविकारी जी।
अविचलभक्ति 'विनयचंद' को दो,
जाणूं रीझ तुम्हारी जी ॥श्री॥७॥

३-श्री संभवजिन-स्तवन

(आज म्हारा पारसजीने चालो वंदन जइए-यह देशी)

आज म्हारा संभव जिनका,
हित चितसूँ गुण-गास्यां।
मधुर-मधुर स्वर राग अलापो,
गहरे शब्द गुंजास्यां राज।
आज म्हारा संभव जिनका,
हित चितसूँ गुण गास्यां ॥आ०॥१॥
नृप "जीतारथ" 'सेन्या" राणी,
तासुत सेवकथास्यां।
नवधा भक्तिभाव सों करने,
प्रेम मगन हुइ जास्यां राज ॥आ०॥२॥

मन वच काय लाय प्रभु सेती,
निसदिन सास उसास्यां।
संभव जिनको मोहनी मूरति,
हिये निरन्तर ध्यास्यां राज ॥आ०॥३॥

दीन दयाल दीन बंधू के,
खानाजाद कहास्यां।
तन-धन प्राण समरपी प्रभु को,
इनपर वेग रिझास्यां राज ॥आ०॥४॥

अष्ट कर्म दल अति जोरावर,
ते जीत्या सुख पास्यां।
जालम मोहमार को जामें,
साहस करी भगास्यां राज ॥आ०॥५॥

ऊबट पंथ तजी दुरगति को,
शुभगति पंथ समास्यां।
आगम अरथ तणे अनुसारे,
अनुभव दसा जगास्यां राज ॥आ०॥६॥

काम क्रोध मद लोभकपट तजि,
निज गुणसूँ लवलास्यां।
'विनयचंद' संभव जिन तूठ्याँ,
आवागवन मिटास्यां राजा ॥आ०॥७॥

४—श्री अभिनन्दनजिन—स्तवन

(आदर जीव क्षमा गुण आदर—यह देशी)

श्री अभिनंदन दुःख निकन्दन,
बन्दन पूजन योग जी।
आसा पूरो चिन्ता चूरो,
आपो सुख आरोग जी ॥श्री०॥१॥
"संबर" राय "सिधारथ" राणी,
तेहनो आतम जातजी।
प्राण पियारो साहब सांचो,
तूही मातने तातजी। ॥श्री०॥२॥
कइयक सेव करें शंकर की,
कइयक भजें मुरार जी।

गणपति सूर्य उमा कइ सुमरें,
हूँ सुमरुं अविकारजी ॥श्री॥३॥
देव कृपा सूँ पामें लक्ष्मी,
सो इण भव को सुक्ख जी।
तो तूठाँ इन भव पर भवमें,
कदी न व्यापे दुःखजी ॥श्री०॥४॥
यद्यपि इन्द्र नन्रेद्र निवाजे,
तद्यपि करत निहालजी।
तू पुजनीक नरेन्द्र इन्द्रको,
दीन दयाल कृपाल जी ॥श्री०॥५॥
जब लग आवागमन न छूटे,
तब लग ए अरदासजी।
सम्पति सहित ज्ञान समकित गुण,
पाऊं दृढ़ विश्वासजी ॥श्री०॥६॥
अधम उधारन विरद तिहारो,
जोवो इण संसारजी।

लाज 'विनयचन्द'की अब तोने,
    भवनिधिपार उतारजी ॥श्री०॥७॥

५–श्री सुमतिजिन–स्तवन

(श्रीसितल जिन साहिबाजी–यह देशी)

सुमति जिणेसर साहिबाजी,
    "मेघरथ" नृप नो नंद ।
"सुमंगला" माता तणो जी,
    तनय सदा सुखकंद ॥
        प्रभु त्रिभुवन तिलोजी ॥१॥

सुमति सुमति दातार,
    महा महिमानिलोजी ।
प्रणमूँ बार हजार,
    प्रभु त्रिभुवन तिलोजी ॥प्रभु०॥२॥

मधुकर नो मन मोहियोजी,
    मालती कुसुम सुवास ।

त्यूँ मुज मन मोह्यो सही,
जिन महिमा सुविमास ॥प्रभु०॥३॥

ज्यूँ पङ्कज सूरजमुखीजी,
विकसै सूर्य प्रकाश ।
त्यूँ मुज मनड़ो गहगहै,
सुनि जिन चरित हुलास ॥प्रभु०॥४॥

पपइयो पीउ-पीउ करेजी,
जान वर्षाऋतु मेह ।
त्यूँ मो मन निसदिन रहै,
जिन सुमरन सूँ नेह ॥प्रभु०॥५॥

काम भोगनी लालसाजी,
थिरता न धरे मन्न ।
पिण तुम भजन प्रतापथी,
दाझै दुरमति वन्न ॥प्रभु०॥६॥

भवनिधि पार उतारियेजी,
भक्त वच्छल भगवान ।

'विनयचन्दकी' वीनती,
थें मानो कृपानिधान ॥प्रभु०॥७॥

६—श्री पद्मप्रभजिन-स्तवन

(श्याम कैसे गज को फन्द छुड़ायो-यह देशी)

पद्म प्रभु पावन नाम तिहारो,
पतित उद्धारन हारो ॥टेर॥

जदपि धीवर भील कसाई,
अति पापिष्ठ जमारो ।
तदपि जीव हिंसा तज प्रभु भज,
पावे भवनिधि पारो ॥पद्म॥१॥

गौ ब्राह्मण प्रमदा बालककी,
मोटी हत्याचारो ।
तेहनो करणहार प्रभु-भजने,
होत हत्यासूँ न्यारो ॥पद्म॥२॥

वेश्या चुगल छिनार जुवारी,
चोर महा बटमारो ।

जो इत्यादि भजें प्रभु तोने,
तो निवृते संसारो ॥पद्म॥३॥
पाप पराल को पुंज बन्यो,
अति मानो मेरु अकारो ।
ते तुम नाम हुताशन सेती,
सहजे प्रज्ज्वलत सारो ॥पद्म॥४॥
परम धर्म को मरम महारस,
सो तुम नाम उचारो ।
या सम मंत्र नहीं कोइ दूजो,
त्रिभुवन मोहन गारो ॥पद्म॥५॥
तो सुमरण बिन इण कलयुग में,
अवर न कोइ अधारो ।
मैं वारी जाऊं तो सुमरन पर,
दिन-दिन प्रीत बधारो ॥पद्म॥६॥
"सुषमा राणी" को अंगजात तू,
"श्रीधर" राय कुमारो ।

'विनयचन्द' कहे नाथ निरंजन,
जीवन प्राण हमारो ॥पद्म॥७॥

७-श्री सुपार्श्वजिन-स्तवन

(प्रभुजी दीनदयाल सेवक सरणे आयो-यह देशी)

श्री जिनराज सुपार्श्व,
पूरो आस हमारी ॥टेर॥
"प्रतिष्ठसेन" नरेश्वर को सुत,
"पृथ्वी" तुम महतारी ।
सुगुण सनेही साहिब सांचो,
सेवक ने सुखकारी ॥श्रीजिन०॥१॥
धर्म काम धन मोक्ष इत्यादिक,
मन वांछित सुख पूरो ।
बार-बार मुझ यही बीनती,
भव-भव चिंता चूरो ॥श्रीजिन०॥२॥
जगत् शिरोमणि भक्ति तिहारी,
कल्पवृक्ष सम जाणूं ।

पूरणब्रह्म प्रभु परमेश्वर,
भव-भव तुम्हें पिछाणूं ॥श्रीजिन०॥३॥
हूँ सेवक तू साहिब मेरो,
पावन पुरुष विज्ञानी ।
जनम-जनम जित-तिथ जाऊं तो,
पालो प्रीति पुरानी ॥श्रीजिन॥४॥
तारण-तरण सरण-असरण को,
विरद इसो तुम सोहे ।
तो सम दीनदयाल जगत में,
इन्द्र नरेन्द्र न को है ॥श्रीजिन०॥५॥
स्वयंभु रमण बड़ो समुद्र में,
शैल सुमेर बिराजे ।
तू ठाकुर त्रिभुवनमें मोटो,
भक्ति किया दुःख भाजे ॥श्रीजिन०॥६॥
अगम अगोचर तू अविनाशी,
अलख अखंड अरूपी ।

चाहत दरस 'विनयचंद, तेरो,
सच्चिदानंद स्वरूपी ॥श्रीजिन०॥७॥

८—श्री चन्द्रप्रभजिन-स्तवन

(चौकनी-देशी)

जय जय जगत शिरोमणी,
हूँ सेवक ने तू धणी ।
अब तोसूँ गाढ़ी बणी,
प्रभु आशा पूरो हमतणी ॥
मुझ म्हेर करो,
चन्द्र प्रभू जग जीवन अन्तरजामी ॥टेर॥
भव दुःख हरो,
सुणिये अरज हमारी त्रिभुवन स्वामी
॥मुझ०॥१॥
"चन्द्रपुरी" नगरी हती,
"महासेन" नामा नरपति ।

राणी "श्रीलखमा" सती,
तस नन्दन तू चढ़ती रती ॥मुझ०॥२॥

तू सरवज्ञ महाज्ञाता,
आतम अनुभव को दाता ।
तो तूठां लहिये साता,
धन्य जगत में तुम ध्याता ॥मुझ०॥३॥

शिव सुख प्रार्थना करसूँ,
उज्ज्वल ध्यान हिये धरसूँ ।
रसना तुम महिमा करसूँ,
प्रभु इण विध भवसागर तिरसूँ ॥मुझ०॥४॥

चंद्र चकोरन के मन में,
गाज अवाज होवे घनमें ।
पिय अभिलाषा ज्यों त्रियतनमें,
त्यों बसियो तू मो चितवनमें ॥मुझ०॥५॥

जो सुनजर साहिब तेरी,
तो मानो विनती मेरी ।

काटो करम भरम वेरी,
प्रभु पुनरपि नहिं करूँ भव फेरी ॥मुझ०॥६॥
आतम-ज्ञान दशा जागी,
प्रभु तुम सेती लवलागी ।
अन्य देव भ्रमना भागी,
'विनयचंद' तिहारो अनुरागो ॥मुझ०॥७॥

९-श्री सुविधिजिन-स्तवन

(बुढापो वेरी आवियो हो-यह देशी)

"काकंदी" नगरी भली हो,
"श्रीसुग्रीव" नृपाल ।
"रामा" तस पटरागनी हो,
तस सुत परम कृपाल ॥
श्री सुविध जिणेसर वंदिये हो ॥टेर॥१॥
प्रभुता त्यागी राजनी हो,
लीधो संजम भार ।

निज आतम अनुभवथकी हो,
पाम्या पद अविकार ॥श्री०॥२॥
अष्ट कर्म नो राजवी हो,
मोह प्रथम क्षय कीन ।
सुध समकित चारित्रनो हो,
परम क्षायक गुणलीन ॥श्री०॥३॥
ज्ञानावरणी दर्शणावरणी हो,
अन्तराय कियो अन्त ।
ज्ञान दरशन बल ये तिहूँ हो,
प्रकट्या अनन्तानन्त ॥श्री०॥४॥
अव्याबाध सुख पामिया हो,
वेदनी करम खपाय ।
अवगाहना अटल लही हो,
आयु क्षय कर जिनराय ॥श्री०॥५॥
नाम करम नो क्षय करी हो,
अमूर्त्तिक कहाय ।

अगुरु लघुपणो अनुभव्यो हो,
गोत्र करम मुकाय ॥श्री०॥६॥

अष्ट गुणाकर ओलख्यो हो,
जोति रूप भगवंत ।
"विनयचंद" के उरवसो हो,
अहोनिश प्रभु पुष्पदंत ॥श्री०॥७॥

१०-श्री शीतलजिन-स्तवन

"श्रीदृढरथ" नृप तो पिता,
"नंदा" थारी माय ।
रोम-रोम प्रभु मो भणी,
सीतल नाम सुहाय ॥
जय जय जिन त्रिभुवन धणी ॥टेर॥१॥

करुणानिध करतार,
सेव्या सुरतरु जेहवो ।
वाँछित सुख दातार ॥जय॥२॥

प्राण पियारा तुम प्रभु,
पतिवरता पति जेम ।
लगन निरंतर लगरही,
दिन-दिन अधिको प्रेम ॥जय०॥३॥

शीतल चंदन नी परे,
जपता निस-दिन जाप ।
विषय कषाय थी ऊपनो,
मेटो भव-दुःख ताप ॥जय०॥४॥

आर्त्त रौद्र परिणाम थी,
उपजे चिन्ता अनेक ।
ते दुःख कापो मानसिक,
आपो अचल विवेक ॥जय०॥५॥

रोगादिक क्षुधा तृषा,
शस्त्र अशस्त्र प्रहार ।
सकल शरीरी दुःख हरो,
दिलसूँ विरुद विचार ॥जय०॥६॥

सुप्रसन्न होय शीतल प्रभु,
तू आसा बिसराम ।
"विनयचंद" कहे मो भणी,
दीजे मुक्ति मुकाम ॥जय०॥८॥

११–श्री श्रेयांशजिन–स्तवन

(राग–काफी-देसी–होरी नी)

श्रेयांश जिनन्द सुमररे ॥टेर॥

चेतन जाण कल्याण करन को,
आन मिल्यो अवसररे ।
शास्त्र प्रमाण पिछान प्रभू गुण,
मन चंचल थिर कररे ॥श्रे०॥१॥

सास उसास बिलास भजन को,
दृढ विश्वास पकररे ।
अजपाभ्यास प्रकाश हिये बिच,
सो सुमरन जिनवररे ॥श्रे०॥२॥

कंद्रप क्रोध लोभ मद माया,
ये सबही परहररे ।
सम्यक्दृष्टि सहज सुख प्रगटे,
ज्ञान दशा अनुसररे ॥श्रे०॥३॥

झूठ प्रपंच जोबन तन धन अरु,
सजन सनेही घररे ।
छिनमें छोड़ चले पर भव को,
बांध सुभासुभ थररे ॥श्रे०॥४॥

मानस जनम पदारथ जाको,
आसा करत अमररे ।
ते पूरब सुकृत कर पायो,
धरम-मरम दिल धररे ॥श्रे०॥५॥

'बिश्वसैन'' "विस्नाराणी'' को,
नंदन तू न बिसररे ।
सहज मिटे अज्ञान अविद्या,
मुक्ति पंथ पग भररे ॥श्रे०॥६॥

तू अविकार विचार आतम गुन,
भव-जंजाल न परुरे ।
पुद्‌गल चाह मिटाय 'विनयचन्द',
ते जिन तू न अवरुरे ॥श्रे०॥७॥

१२-श्रीवासुपूज्यजिन-स्तवन

(तेरी फूलसी देह पलकमें पलटे-यह देशी)

प्रणमूँ वासुपूज्य जिन नायक,
सदा सहायक तू मेरो ।
बिषम वाट घाट भयथानक,
परमसिरे सरनो तेरो ॥प्रणमू०॥१॥
खलदल प्रबल दुष्ट अति दारुण,
जो चौ तरफ दिये घेरो ।
तो पिण कृपा तुम्हारी प्रभुजी,
अरियन होव प्रगटे चेरो ॥प्र०॥२॥
विकट पहार उजार बीच कोइ,
चोर कुपात्र करे हेरो ।

तिण बिरियां करिया तो सुमरण,
कोई न छीन सके डेरो ॥प्र०॥३॥
राजा बादशाह जो कोइ कोपे,
अति तकरार करे छेरो ।
तदपि तू अनुकूल होय तो,
छिन में छूट जाय सब केरो ॥प्र०॥४॥
राक्षस भूत पिशाच डाकिनी,
साकनी भय न आवे नेरो ।
दुष्ट मुष्ट छल छिद्र न लागे,
प्रभु तुम नाम भज्यां गहरो ॥प्र०॥५॥
विस्फोटक कुष्टादिक संकट,
रोग असाध्य मिटे सगरो ।
विष प्यालो अमृत होय प्रगमें.
जो विश्वास जिनंद केरो ॥प्र०॥६॥
मात 'जया' 'वसु' नृप के नन्दन,
तत्व जथारथ बुध प्रेरो।

बे कर जोरि 'विनयचंद' बिनवे,
बेग मिटे मुझ भव फेरो ॥प्र०॥७॥

१३–विमलनाथजिन–स्तवन

(अहो शिवपुर नगर सुहामणो–यह देशी)

विमल जिनेश्वर सेविये,
थारी बुध निर्मल हो जायरे जीवा।
विषय-विकार बिसार ने,
तू मोहनी करम खपाय रे।
जीवा विमल जिनेश्वर सेविये ॥१॥

सूक्ष्म साधारण पणे,
परतेक बनस्पती मांयरे, जीवा।
छेदन भेदन तैंसही
मर-मर उपज्यो तिण कायरे ॥जी०॥२॥

काल अनंत तिहांभम्यो,
तेहना दुःख आगमथी संभालरे जीवा।

पृथ्वी अप तेउ वायु में,
रह्यो असंख्य असंख्य कालरे ॥जी०॥३॥
एकेन्द्री सूँ बेन्द्री थयो
पुन्याइ अनंती वृद्धिरे, जीवा।
सन्नीपचेंन्द्री लग पुन्यबध्या,
अनंतानंत प्रसिद्ध रे ॥जी०॥४॥
देव नरक तिरयंच में,
अथवा मानव भवबीचरे, जीवा।
दीन पणे दुःख भोगव्या,
इण चारों ही गति बीचरे ॥जी०॥५॥
अबके उत्तम कुल मिल्यो,
भेट्या उत्तम गुरु साधरे, जीवा।
सुण जिन वचन सनेह से,
समकित व्रत शुद्ध आराधरे ॥जी०॥६॥
पृथ्वीपति 'कृतभानु' को,
'सामाराणी' को कुमाररे जीवा।

"विनयचंद" कहे ते प्रभु,
सिर सेहरो हिवड़ारो हाररे ॥जी०॥७॥

१४–श्रीअनन्तजिन–स्तवन

(वेगा पधारोरे महेलथी–यह देशी)

अनंत जिनेश्वर नित नमूं,
अद्भुत जोत अलेख।
ना कहिये ना देखिये,
जाके रूप न रेख ॥अनंत॥१॥

सूक्षम थो सूक्षम प्रभू,
चिदानंद चिद्रूप।
पवन शब्द आकाशथी,
सूक्षम ज्ञान सरूप ॥अनंत॥२॥

सकल पदारथ चिन्तवूं,
जे–जे सूक्षम होय।
तिणथी तू सूक्षम महा,
तो सम अवरन कोय ॥अनंत॥३॥

कवि पंडित कही-कही थके,
आगम अर्थ विचार।
तो पण तुम अनुभव तिको,
न सके रसना उचार ॥अनंत॥४॥

आपभणे मुख सरस्वती,
देवी आपो आप।
कही न सके प्रभु तुम सत्ता,
अलख अजप्पा जाप ॥अनंत॥५॥

मन बुध वाणी तो विषे।
पहुंचे नहीं लगार।
साक्षी लोकालोकनो,
निर्विकल्प निर्विकार ॥अनंत॥६॥

मा 'सुजसा' 'सिहरथ' पिता,
तस सुत 'अनंत' जिनंद।
"विनयचंद" अब ओलख्यो,
साहिब सहजानन्द ॥अनंत॥७॥

१५—धर्मजिन—स्तवन

(आज नहेजोरे दीसे नाहलो—यह देशी)

धरम जिनेश्वर मुझ हिवडे बसो,
प्यारो प्राण समान।
कबहूँ न विसरूं हो चितारूं नहीं,
सदा अखंडित ध्यान ॥ध०॥१॥
ज्यूं पनिहारी कुम्भ न वीसरे,
नटवो नृत्य निदान।
पलक न विसरे हो पदमनि पियुभणी,
चकवी न विसरे भान ॥ध०॥२॥
ज्यूं लोभी मन धनकी लालसा,
भोगी के मन भोग।
रोगी के मन माने औषधी,
जोगी के मन जोग ॥ध०॥३॥
इण पर लागी हो पूरण प्रीतड़ी,
ज़ाव जीव परियंत।

भव-भव चाहूँ हो न पड़े आंतरो,
भव भंजन भगवंत ॥घ०॥४॥

काम-क्रोध मद् मत्सर लोभथो,
कपटी कुटिल कठोर।
इत्यादिक अवगुण कर हूँ भरयो,
उदय कर्मके जोर ॥घ०॥५॥

तेज प्रताप तुमारो प्रगटे,
मुज हिवड़ा में आय।
तो हूँ आतम निज गुण संभालने,
अनंत बली कहिवाय ॥घ०॥६॥

'भानू' नृप 'सुव्रता' जननी तणो,
अंगजात अभिराम।
'विनयचंद'ने वल्लभ तू प्रभु,
शुध चेतन गुण धाम ॥घ०॥७॥

१६-श्री शांतिजिन-स्तवन

(प्रभुजी पधारो हो नगरी हमतणी-यह देशी)

"विश्वसेन" नृप "अचला" पटरानी,
तस सुत कुल सिणगार हो सौभागी।
जनमत शान्ति करी निज देसमें,
मरी मार निवार हो सौभागी।
शान्ति जिनेश्वर साहिब सोलमां ॥१॥
शान्तिदायक तुम नाम हो सौभागी।
तन मन बचन सुध कर ध्यावतां,
पूरे सघली आस हो सौभागी ॥२॥
विघन न व्यापे तुम सुमरन कियां।
नासे दारिद्र दुःख हो सौभागी.
अष्ट सिद्धि नव निद्धि पग पग मिले,
प्रगटे सगला सुख हो, सौभागी ॥३॥
जेहने सहायक शान्ति जिनंद तू,
तेहने कमीय न काय हो, सौभागी ॥४॥

जे जे कारज मन में तेवड़े,
ते-ते सफला थाय हो, सौभागी ॥४॥

दूर दिसावर देश प्रदेश में,
भटके भोला लोग हो, सौभागी ॥
सानिधकारी सुमरन आपरो,
सहज मिटे सहु सोक हो, सौभागी ॥५॥

आगम-सास्त्र सुणो छे एहवी,
जे जिण-सेवक होय हो, सौभागी ॥
तेहनी आशा पूरे देवता ।
चौसठ इन्द्रादिक सोय हो, सौभागी ॥६॥

भव-भव अन्तरयामी तुम प्रभू,
हमने छे आधार हो, सौभागी ॥
बेकर जोड़ "विनयचंद" विनवे,
आपो सुख श्री कार हो, सौभागी ॥७॥

१७-श्री कुन्थुजिन-स्तवन

(रेखता)

कुंथु जिनराज तू ऐसो,
नहीं कोइ देव तो जैसो ।
त्रिलोकी नाथ तू कहिये,
हमारी बांह दृढ गहिये ॥कुंथु०॥१॥

भवोदधि डूबतो तारो,
कृपानिधि आसरो थारो ।
भरोसा आपका भारी,
विचारो बिरुद उपकारी ॥कुंथु०॥२॥

उमाहो मिलन को तोसे,
न राखो आंतरो मोसे ।
जैसी सिद्ध अवस्था तेरी,
तैसी चैतन्यता मेरी ॥कुंथु०॥३॥

करम-भ्रम जाल को दपट्यो,
विषय सुख ममत में लपट्यो ।

भम्यो हुँ चहूँ गती माहीं,
उदयकर्म भ्रम की छाँही ॥कुंथु०॥४॥

उदय को जोर है जौलों,
न छूटे विषय सुख तौलों।
कृपा गुरुदेव की पाई,
निजातम भावना भाई ॥कुंथु०॥५॥

अजब अनुभूति उरजागी,
सुरत निज रूप में लागी।
तुम्हीं हम एकता जाणूं—,
द्वैत भ्रम-कल्पना मानूं ॥कुंथु०॥६॥

"श्रीदेवी" 'सूर' नृप नन्दा,
अहो सरवज्ञ सुख कन्दा।
"विनयचन्द" लीन तुम गुन में,
न व्यापे अविद्या मन में ॥कुंथु॥७॥

१८-श्री अरहनाथ जिन-स्तवन

(अलगी गिरनारी-यह देशी)

अरहनाथ अविनाशी शिव सुख लीधो,
विमल विज्ञान विलासी ॥साहब सीधो ॥१॥

चेतन भज तू अरह नाथने,
ते प्रभु त्रिभुवन राय।
तात 'सुदर्शन' 'देवी' माता,
तेहनो पुत्र कहाय ॥साहिब सीधो०॥२॥

कोड़ जतन करतां नहीं पामें,
एहवी मोटी माम ।
ते जिन भक्ति करी ने लहिये,
मुक्ति अमोलक ठाम ॥सा०॥३॥

समकित सहित कियां जिन भगती,
ज्ञानदरसन चारित्र ।
तप बीरज उपयोग तिहारा,
प्रगटे परम पवित्र ॥सा०॥४॥

स्व उपयोग सरूप चिदानंद,
जिनवर ने तू एक।
द्वैत अविद्या विभ्रम मेटो,
वाधे शुद्ध विवेक ॥सा०॥५॥

अलख अरूप अखण्डित अविचल,
अगम अगोचर आप।
निरविकल्प निकलंक निरंजन,
अद्भुत जोति अमाप ॥सा०॥६॥

ओलख अनुभव अमृत याको,
प्रेम सहित रस पीजे।
हू-तू छोड़ "विनयचन्द" अंतर
आतमराम रमीजे ॥सा०॥७॥

१९-श्री मल्लिजिन-स्तवन

(लावणी)

मल्लि जिन बाल ब्रह्मचारी।
"कुम्भ" पिता "परभावती"
मइया तिनकी कुँवारी ॥टेर॥

मां नी कूंख कंदरा
    मांही उपना अवतारी ।
मालती कुसुम-मालीनी वांछा
    जननी उरधारी ॥म०॥१॥

तिणथी नाम मल्लि जिन थाप्यो,
    त्रिभुवन प्रिय कारी ।
अद्भुत चरित तुम्हारो प्रभुजी,
    वेद धरयो नारी ॥म०॥२॥

परणन काज जान सज आए,
    भूपति छः भारी ।
मिथिला पुर घेरी चौतरफा,
    सेना विस्तारी ॥म०॥३॥

राजा "कुम्भ" प्रकाशी तुमपे,
    बीती विधि सारी ।
छहुं नृप जान सजी तो परणन,
    आया अहंकारी ॥म०॥४॥

श्रीमुख धीरप दिधी पिताने,
राखो हुशियारी ।
पुतली एक रची निज आकृति,
थोथी ढकवारी ॥म०॥५॥

भोजन सरस भरी सा पुतली,
श्री जिन सिणगारी ।
भूपति छः बुलवाया मंदिर,
बिच बहु दिन टारी ॥म०॥६॥

पुतली देख छहुँ नृप मोहा,
अवसर विचारी ।
ढंक उघार दियो पुतली को,
भवक्यो अन्न भारी ॥म०॥७॥

दुसह दुगन्ध सही ना जावे,
उठ्या नृपहारी ।
तब उपदेश दियो श्रीमुख से,
मोह दशा टारी ॥म०॥८॥

महा असार उदारिक देही,
पुतली इव प्यारी।
संग किया भटके भव-दुःख में,
नारि नरक-बारी ॥म०॥९॥

भूपति छः प्रतिबोध मुनि हो,
सिद्धगति संभारी।
"विनयचंद" चाहत भव-भव में,
भक्ति प्रभू थारी ॥म०॥१०॥

२०-श्री मुनिसुव्रतजिन-स्तवन

(चेतरे चेतरे मानवी-यह देशी)

श्री मुनिसुव्रत साहिबा,
दीनदयाल देवाँ तणा देव के।
तारण तरण प्रभु मो भणी,
उज्ज्वल चित्त सुमरूं नितमेवके ॥श्री०॥१॥
हूँ अपराधी अनादि को,
जनम-जनम गुना किया भरपूर के।

लूटिया प्राण छः कायना,
सेविया पाप अठार करूरके। ॥श्री०२॥

पूर्व अशुभ कर्तव्यता,
तेहने प्रभू तुम न विचारके।
अधम उधारण विरुद छे,
सरण आयो अब कीजिये सारके ॥श्री०३॥

किंचित पुन्य परभावथी,
इण भव ओलख्यो श्रीजिन धर्मके।
निवर्तूं नरक निगोदथी,
एहवो अनुग्रह करो परिब्रह्मके ॥श्री:४॥

साधुपणो नहिं संग्रह्यो,
श्रावक व्रत न किया अंगीकारके।
आदर्या तो न आराधिया,
तेहथी रुलियो हूं अनंत संसारके ॥श्री०५॥
अब समकित व्रत आदर्यो,
तेने अराधी उतरूँ भवपारके।

जनम जीतव सफलो हुवे,
इण पर विनवूँ बार हजारके ॥श्री०६॥
"सुमति" नराधिप तुम पिता,
धन धन श्री "पद्मावती" मायके।
तस सुत त्रिभुवन तिलक तू,
वंदत "विनयचंद्र" सीस नवाय के ॥श्री०७॥

२१-श्री नमिजिन-स्तवन

(सुणियोरे बाला कुटिल मंझारी तोता ले गइ-यह देशी)

सुज्ञानी जीवा भजलो जिन इकवीसवाँ
"विजयसेन" नृप "विप्राराणी",
नमीनाथ जिन जायो।
चौसठ इन्द्र कियो मिल उत्सव,
सुर नर आनंद पायारे ॥सु०॥१॥
भजन किया भव-भवना दुष्कृत,
दुःख दुर्भाग्य मिट जावे।
काम, क्रोध, मद मत्सर तृष्णा,
दुर्मति निकट न आवेरे ॥सु०॥२॥

जीवादिक नव तत्व हिये धर,
हेय ज्ञेय समझीजे ।
तीजो उपादेय ओलखने,
समकित निरमल कीजेरे ॥सु०॥३॥

जीव अजीव बंध, ये तीनों,
ज्ञेय जथारथ जानो ।
पुन्य पाप आस्त्रव परिहरिये,
हेय पदारथ मानो रे ॥सु०॥४॥

संवर मोक्ष निर्जरा निज गुण,
उपादेय आदरिये ।
कारण कारज जाण भली विध,
भिन-भिन निरणोकरियेरे ॥सु०॥६॥

तू सो प्रभू प्रभू सो तू है,
द्वैत कल्पना मेटो ।
सत्‌चित आनंदरूप 'विनयचंद'
परमातम पद भेंटोरे ॥सु०॥७॥

२२—श्री नेमिजिन—स्तवन.

(नगरी खुब बणी छे जी--यह देशी)

श्रीजिनमोहन गारो छे,
जीवन प्राण हमारो छे।
"समुद्रविजय" सुत श्री नेमीश्वर,
जादव कुल को टीको।
रत्न कुक्ष धारिणी "शिवादे",
तेहनो नंदन नीको ॥श्री०॥१॥

सुन पुकार पशु की करुणा कर,
जानि जगत् सुख फीको।
नव भव नेह तज्यो जोबन में,
उग्रसेन नृप धी को ।श्री०॥२॥

सहस पुरुष संग संजम लीधो,
प्रभुजी पर उपकारी।
धन-धन नेम राजुलकी जोड़ी,
महा वालब्रह्मचारी ॥श्री०३॥

बोधानंद सरूपानंद में,
    चित एकाग्र लगायो ।
आतम-अनुभव दशा अभ्यासी,
    शुक्लध्यान जिनध्यायो ॥श्री०॥४॥

पूर्णानंद केवली प्रगटे,
    परमानंद पद पायो ।
अष्टकर्म छेदी अलवेसर,
    सहजानंद समायो ॥श्री०॥५॥

नित्यानंद निराश्रय निश्चल,
    निर्विकार निर्वाणी ।
निरांतक निरलेप निरामय,
    निराकार वरनाणी ॥श्री०॥६॥

एवो ज्ञान समाधि संयुत,
    श्री नेमिश्वर स्वामी ।
पूरण कृपा "विनयचंद" प्रभु की,
    अब तो ओलख पामी ॥श्री०॥७॥

२३-श्री पार्श्वजिन-स्तवन

(जीवरे शीयल तणो कर संग-यह देशी)

जीवरे तू पार्श्व जीनेश्वर वन्द ॥ टेर ॥

"अश्वसेन" नृप कुल तिलोरे,
"बामा दे" नो नंद ।
चिंतामणि चित में बसेरे,
दूर टले दुःख द्वंद ॥जीवरे०॥१॥

जड़ चेतन मिश्रित पणेरे,
करम सुभासुभ थाय ।
ते विभ्रम जग कल्पनारे,
आतम अनुभव न्याय ॥जीवरे०॥२॥

वेहमी भय माने जथारे,
सूने घर वैताल ॥
त्यूँ मूरख आतम विषेरे,
मान्यो जग भ्रम जाल ॥जीवरे०॥३॥

सर्प अंधारे रासड़ीरे;
रूपो सीप मझार ।

मृगतृष्णा अंबू मृषारे,
ज्यूँ आतम में संसार ॥जीवरे॥४॥

अग्नि विषे ज्यूँ मणि नहीं रे,
मणि में अग्नि न होय ।
सपने की संपति नहीं,
ज्यूँ आतम में जग जोय ॥जीवरे॥५॥

बांझ पुत्र जनमे नहीं रे,
सींग शशै सिर नाय ।
कुसुम न लागे ब्योम मेंरे,
त्यूँ जग आतम मांय ॥जीवरे०॥६॥

अमर अजोनी आत्मारे,
है निश्चे तिहुं काल ।
"विनयचंद" अनुभव थकीरे,
तू निज रूप सम्हाल ॥जीवरे०॥७॥

२४-श्री महावीरजिन-स्तवन

(श्री नवकार जपो मन रंगे-यह देशी)

श्री महावीर नमो वरनाणी,
शासन जेहनो जाणरे प्राणी ।
धन धन जनक 'सिद्धरथ' राजा
धन 'त्रसलादे' मातरे प्राणी ॥श्री०॥१॥

ज्यँा सुत जायो गोद खिलायो,
'वर्धमान' विख्यातरे प्राणी ।
प्रवचन सार विचार हिया में,
कीजे अरथ प्रमाणरे प्राणी ॥श्री०॥२॥

सूत्र विनय आचार तपस्या,
चार प्रकार समाधरे प्राणी ।
ते करिये भवसागर तरिये,
आतम भाव अराधरे प्राणी ॥श्री०॥३॥

ज्यों कंचन तिहु काल कहीजे,
भूषण नाम अनेकरे प्राणी ।

त्यों जगजीव चराचर जोनी,
है चेतन गुण एकरे प्राणी ॥श्री०॥४॥

अपनो आप विषै थिर आतम,
सोहं हंस कहायरे प्राणी ।

केवल ब्रह्म पदारथ परिचय,
पुद्गल भरम मिटायरे प्राणी ॥श्री०॥५॥

शब्द रूप रस गंध न जामें,
नास परस तप छांहरे प्राणी ।

तिमर उद्योत प्रभा कछु नाहीं,
आतम अनुभव मांहिरे प्राणी ॥श्री०॥६॥

सुख दुःख जीवन मरन अवस्था,
ए दस प्राण संगातरे प्राणी ।

इनथी भिन्न 'विनयचन्द' रहिये,
ज्यों जलमें जलजातरे प्राणी ॥श्री०॥७॥

॥ कलश ॥

चौबीस तीरथ नाथ कीरति,
गावतां मन गहगहे ।

कुमट 'गोकुलचन्द' नन्दन,
'विनयचन्द' ईणपर कहे ॥
उपदेश 'पूज्य हमीर मुनिको'
तत्व निज उरमें धरी ॥
उगणीस सौ छः के छमच्छर,
महास्तुति पूरण करी ॥

(भजन)

मानव तन को पायी
हो हो करणी करलो ॥टेर॥
लक्ष चौरासी में भटकत आया,
चिंतामणि सम नरतन पाया;
इसको सार्थक करलो
हो हो करणी करलो ॥मा०॥१॥
दुर्व्यसनों में व्यर्थ हि फंसकर,
प्राप्त समय को यों ही गमाकर;

पुण्य कलश मत ढोलो
हो हो करणी० ॥मा०॥२॥

कौन हूँ मैं और कहाँ से आया,
अपने संग में क्या क्या लाया;
ऐसा विचार जरा करलो
हो हो करणी० ॥म०॥३॥

सब स्वार्थ की ही है माया,
इस में दिलको क्यों उलझाया;
जिन चरणन मन धरलो
हो हो करणी० ॥मा०॥४॥

'श्रेयस्कर' की यह ही कामना,
अपना करतब पालन करना;
पाप कर्म सब टालो
हो हो करणी० ॥मा०॥५॥

(भजन)

मनवा कह्योना करे।
प्रभु पद पद्म में प्रेम न राखे,
अघ मग फिरत फिरे ॥टेर॥
सब अनरथ को मूल विषय है,
जानत ताहि परे;
मूढ़ भूड सम विषय कीच में,
फसकर के है मरे ॥म०॥१॥
संयम अमृत रस नहीं चाखे,
विषय विष पान करे;
प्रेम सहित सद्गुरु समझावें,
तोय न समझ परे ॥म०॥२॥
श्री जिनवाणी अति सुखदेनी
श्रवण न नित्य करे;
पूरण सद्गुरु योग मिल्यो है,
भटकत है कित रे. ॥म०॥३॥

भटकत-भटकत खोय दियो,
सब दुःख हि संचिधरे
संयम मंदिर में जो डोलो,
दुःख मिटे सगरे. ॥म०॥४॥

गुरु पद पद्म में मन मधुकर,
यों हर्ष सहित विचरे;
'श्रेयस्कर' समता सुगंध से,
बनकर मस्त फिरे. ॥म०॥५॥

(भजन)

विनय सुनो जिनराज
हमारी विनय सुनो ॥टेर॥
भम्यो निरंतर भव बंधन में,
झूठे जग के संबंधन में;
जल्यो क्रोध आदिक ईंधन में,
अब राखो मम लाज ॥हमा०॥१॥

काम अनारज मैंने कीना,
हूँ अजान सबहि विध हीना,
दीजै अभय जानि जन दीना,
दीन दयालु महाराज ॥हमा०॥२॥

सुख दुःख रोग वियोग सहूँगा,
प्रीति सुधारस नित्य पिऊंगा,
इन्द्रिय मन को वश में करूँगा,
जिससे सुधरे काज ॥हमा०॥३॥

शरण त्याग मैं नहिं विचरूँगा,
प्रेम सहित तव नाम जपूंगा,
तव अनुशासन शीष धरूँगा,
आप मेरे शिरताज ॥हमा०॥४॥

चरण कमल में प्रीति रहेगी,
जगकी तनिक न भीति रहेगी;
'श्रेयस्कर' की नीति रहेगी,
ज्ञान चरण अनुराग ॥हमा०॥५॥

(तर्ज- पूजारी मोरे मंदिर में आओ)

जिनेश्वर! मन मन्दिर में आओ,
डूबत है नैया यह मेरी;
भव सागर में, बचाओ ॥जिनेश्वर०॥टेर॥

नीर अपार न तीर दिसे है,
कुछ तो धैर्य बंधाओ ।
मोह भंवर में नैया पड़गइ,
अबतो पार लगाओ. ॥जिनेश्वर०॥१॥

दीन दयालु बिरुद तिहारो,
सो तो ध्यान में लाओ ।
डूबे चाहे नैया मेरी,
अपना विरुद बचाओ ॥ जिनेश्वर०॥२॥

नाथ अनाथ के तुम हो स्वामी,
मोसो अनाथ बताओ ।
'श्रेयस्कर' को पूर्ण भरोसो,
आओ प्रभु तुम आओ ॥जिनेश्वर०॥३॥

(तर्ज–मैं बनकी चिड़ियां बनके बनबन डोलूँ रे)

मैं रात दिवस निज मुख से,
जिन गुण गाऊं रे
मैं निर्मल मन मंदिर में,
उनको बिठाऊं रे ॥टेर॥

मैं जग से नाता तोड़ूं,
जिनवर से प्रीती जोड़ूं.
रागद्वेष और मोह जनित,
सब सुख से मुखड़ा मोड़ूं
नित गुण गाऊं रे ॥मैं०॥१॥

चाहे घोर बिपत्ति आवे,
अथवा कोई ललचावे,
ध्येय से अपने मुझे न कोई,
कभी डिगाने पावे,
'श्रेय' ही ध्याऊं रे ॥मैं०॥२॥

(तर्ज-रखियां बंधावो भैया)

आओ अहिंसा देवी दर्शन देवो हो ॥टेर०॥
हिंसा ने राज्य जमाया,
जग मे ताण्डव फैलाया।
चहुं ओर दुःख ही छाया,
दर्शन देवो हो ॥आओ०॥१॥
हो तुम्ही जगत की माता,
देती सब को सुख साता।
तुम ही से हिन्द सुहाता,
दर्शन देवो हो ॥आओ०॥२॥
सब ही तेरे गुण गावें,
न्योछावर हो हो जावें।
'श्रेयस्कर' को यह भावे,
दर्शन देवो हो ॥आओ०॥३॥

(तर्ज-जाओ-जाओ अय मेरे साधु रहो गुरु के संग)

आओ आओ अय शान्ति प्रभुजी
शान्ती के दातार ॥टेर०॥

आते ही माता के गर्भ में
दूर किया जग रोग।
शान्ति शान्ति की थी सब भू पर
हर्षे थे सब लोग ॥आओ०॥१॥

जैसे रक्षा की कपोत की
कर सब दुःख का नाश।
त्रिविध दुःखमें मैं तो फँसा हूँ
एक तुम्हारी आश ॥आओ०॥२॥

भटकत आया दशों दिशा में
मिला न तुमसा नाथ।
आया शरण में है 'श्रेयस्कर'
पकडो मेरा हाथ ॥आओ०॥३॥

(भजन)

जैन दुनिया को अब हम जगा जायंगे।
वीर स्वामी का संदेश सुना जायगे ॥टेर॥
बनके पूर्ण अहिंसा से बलवान हम,
लेके सत्याग्रह की हाथ तलवार हम,
धर्म विध्वंसियों को हरा जायंगे ॥जैन०॥१॥

जो बाधक हैं उन्नति में कुरूढ़ियां,
नष्ट करके बना देंगे सुरीतियां,
मार्ग जैनत्व का हम दिखा जायंगे ॥जैन॥२॥
जो हैं भाई हमारे से बिछड़े हुवे,
शुद्ध करके उन्हे फिर मिलाते हुवे,
जैन जनता की संख्या बढ़ा जायंगे ॥जैन॥३॥
धर्म देश समाज की रक्षा करें,
विघ्नसंतोषि आकर जो विघ्न करें,
प्राण देकर के उनको हटा जायंगे ॥जैन॥४॥
भावना यह हमारी सदा ही रहे,
विश्व प्रेम बढ़ाकर सुखी सब रहें,
इस प्रणको 'श्रेयस्कर' निभा जायंगे ॥जैन॥५॥

(तर्ज- बातें सुनलो सांवरिया हमारी रे)

विन्ती सुनलो प्रभुजी हमारी रे ॥टेर॥
जबसे स्वरूप ध्यानमें आया है तुम्हारा-
तब ही से हमें ज्ञात हुवा रूप हमारा,
समझी समता है मेरी तिहारी रे ॥विन्ती॥१॥

पैदा हो मेरे ही में मुझे खूब फंसाया-
इन राग द्वेष मोहने हमको है सताया,
बैठो तृष्णा भी जाल पसारी रे ॥विन्ती॥२॥

फंसकर के इनके जालमें मैं दीन बनगया-
सब धर्म धन को खोदिया मैं हीन बनगया,
प्रभो ऐसा हुवा मैं अनारी रे ॥विन्ती॥३॥

तुम दीन के दयालु हो अनाथ नाथ हो-
है प्रार्थना यही कि 'श्रेयस्कर' सनाथ हो,
इक आशा लगी है तुम्हारी रे ॥विन्ती॥४॥

(तर्ज-तुम्हीने मुझको प्रेम सिखाया)

वीर प्रभुने धर्म सिखाया,
मोह नींद से सब को जगाया ॥टेर०॥

शुद्ध अहिंसा पाठ पढ़ाया,
स्याद्वादामृत पान कराया,
तीर्थ के स्थापनहार जिनजी. वीर० ॥१॥

मेघ कुंवर आदिक मुनि तारे,
अर्जुनमाली से सुद्धारे,
कौशिक के तारन हार जिनजी. वीर० ॥२॥

चंदनबाला के दुःख निवारे,
अबतो 'श्रेयस्कर' है द्वारे,
आपही का आधार जिनजी. वीर० ॥३॥

(तर्जः—लाखों सलाम)

श्री ऋषभदेव भगवान
तुमको लाखों प्रणाम
श्री आदिनाथ जिनराज
तुमको लाखों प्रणाम ॥टेर॥

भोगभूमि को कर्मभूमि कर
पुरुषारथ की शक्ति बताकर
उद्यमरत जीवों को बनाकर
सब दुःख भंजनहारी ॥तुम०॥१॥

सिखा पुरुष को कला बहत्तर
चौंसठ कला युक्त नारी कर
नीतिधर्म की राह दिखाकर
बनगये जग हितकारी ॥तुम०॥२॥

कर्म धर्म अनुसार तुम्हीने
चारवर्ण संस्थापित कीने
यथायोग्य सब कारज दीने
राजनीति निर्धारी ॥तुम०॥३॥

आलस प्रमाद रिपु को मारा
पुरुषारथ व्रत तुमने धारा
फिर सारा संसार सुधारा
हुए जगत दुःखहारी ॥तुम०॥४॥

शुद्ध संयमी प्रभुजी बनकर
हुए केवली अरु तीर्थंकर
शरण में आया है 'श्रेयस्कर'
चरणन की बलिहारी ॥तुम०॥५॥

(तर्जः—लाखों सलाम)

श्री महावीर भगवान
तुम को लाखों प्रणाम
श्री वर्द्धमान जिनराज
तुम को लाखों प्रणाम ॥टेर०॥

तत्व अहिंसा का बतलाया
विश्वप्रेम का पाठ पढाया
हिंसा पाप को मार भगाया
जैनधर्म उद्धारी ॥तुम०॥१॥

मात पिताकी भक्ति सिखाकर
भ्रातृ प्रेम का पाठ पढाकर
नीचजनों को उच्च बनाकर
जग समता विस्तारी ॥तुम०॥२॥

स्याद्वाद सिद्धान्त बताया
मिथ्यामत पाखण्ड हटाया
शुद्ध मार्ग ऐसा बतलाया
मिले मोक्ष सुखकारी ॥तुम०॥३॥

राजपाट सुख सम्पति तजकर
चार सहस संग संयम लेकर
तप में अपना जीवन देकर
तीर्थंकर पद धारी ॥तुम०॥४॥

'श्रेयस्कर' का है यह कहना
वर्द्धमान शिक्षा सिर धरना
जीवन को संयम मय करना
मिले मुक्ति सुखकारी ॥तुम०॥५॥



श्री आनन्दघन–चौबीसी



१–श्रीऋषभजिन–स्तवन

(राग–मारु.)

ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम माहरो रे,
ओर न चाहुं रे कंत;
रीझ्यो साहेब संग न परिहरे रे,
भांगे सादि अनंत— ऋषभ० ॥१॥

प्रीतसगाई रे जगमां सहु करे रे,
प्रीतसगाई न कोय;
प्रीतसगाई रे निरुपाधिक कही रे,
सोपाधिक धन खोय— ऋषभ० ॥२॥

कोई कंत कारण काष्ठ भक्षण करे रे,
मळशुं कंतने धाय;
ए मेळो नवि कहिये संभवे रे,
मेळो ठाम न ठाय— ऋषभ० ॥३॥

कोई पतिरंजन अति घणो तप करे रे,
पतिरंजन तन ताप;
ए पतिरंजन में नवि चित्त धरयुं रे,
रंजन धातु मेळाप— ऋषभ० ॥४॥

कोई कहे लीला रे अलख अलखतणी रे,
लख पूरे मन आश;
दोषरहितने लीला नवि घटे रे,
लीला दोषविलास— ऋषभ० ॥५॥

चित्तप्रसन्ने रे पूजन फल कह्युं रे,
पूजा अखंडित एह;
कपट रहित थइ आतम अरपणा रे,
'आनंदघन' पदरेह— ऋषभ० ॥६॥

२—श्री अजितजिन—स्तवन

(राग—आशावरी)

पंथड़ो निहाळुं रे बीजा जिनतणो रे,
अजित अजित गुणधाम;
जे तें जीत्या रे ते मुझ जीतियो रे,
पुरुष किश्युं मुज नाम ?—पंथड़ो०॥१॥

चरमनयण करी मारग जोवतां रे,
भूल्यो सयल संसार;
जेणे नयणे करी मारग जोइए रे,
नयण ते दिव्य विचार— पंथड़ो०॥२॥

पुरुष परंपर अनुभव जोवतां रे,
अंधोअंध पुलाय;
वस्तु विचारे रे जो आगमें करी रे,
चरण धरण नहीं ठाय— पंथड़ो०॥३॥

तर्क विचारे रे वाद परंपरा रे,
पार न पहोंचे कोय;
अभिमत वस्तु रे वस्तुगते कहे रे,
ते विरला जग जोय— पंथड़ो०॥४॥

वस्तु विचारे रे दिव्य नयणतणो रे,
　　विरह पड्यो निरधार;
तरतम जोगे रे तरतम वासना रे,
　　वासित बोध आधार— 　पंथड़ो०॥५॥
काळलब्धि लही पंथ निहाळशुं रे,
　　ए आशा अवलंब;
ए जन जीवे रे जिनजी जाणजो रे,
　　'आनंदघन' मत अंब— 　पंथड़ो०॥६॥

३—श्री संभवजिन—स्तवन

(राग—रामग्री)

संभवदेव ते धुर सेवो सवे रे,
　　लही प्रभु सेवन भेद;
सेवन कारण पहेली भूमिका रे,
　　अभय, अद्वेष, अखेद— 　संभव० ॥१॥
भय चंचळता हो जे परिणामनी रे.
　　द्वेष अरोचक भाव;

खेद प्रवृत्ति हो करतां थाकीए रे,
दोष सबोध लखाव— संभव० ॥२॥
चरमावर्त्त हो चरम करण तथा रे,
भवपरिणति परिपाक;
दोष टले वली दृष्टि खुले भली रे,
प्राप्ति प्रवचन वाक्— संभव० ॥३॥
परिचय पातिक घातक साधुशुं रे,
अकुशल अपचय चेत,
ग्रन्थ अध्यातम श्रवण मनन करी रे,
परिशीलन नय हेत— संभव० ॥४॥
कारण जोगे हो कारज नीपजे रे,
एमां कोइ न वाद;
पण कारणविण कारज साधिये रे,
ए निज मत उन्माद— संभव० ॥५॥
मुग्ध सुगम करी सेवन आदरे रे,
सेवन अगम अनुप;
देजो कदाचित् सेवक याचना रे,
'आनंदघन'-रसरुप— संभव० ॥६॥

४-श्री अभिनन्दनजिन-स्तवन

(राग-धनाश्री सिंधुडा.)

अभिनंदन जिन दर्शन तरसिये,
दर्शन दुर्लभ देव;
मत मत भेदे रे जो जइ पूछिये,
सहु थापे अहमेव— अभि० ॥१॥

सामान्ये करी दरिशण दोहिलुं,
निर्णय सकल विशेष,
मदमें घेर्यो रे अंधो केम करे,
रवि शशि रूप विलेख— अभि० ॥२॥

हेतु विवादे हो चित्त धरी जोइए,
अति दुर्गम नयवाद;
आगमवादे हो गुरुगम को नहीं,
ए सबलो विषवाद— अभि० ॥३॥

घाती डुंगर आडा अति घणा,
तुज दरिशण जगनाथ;
ढिठाइ करी मारग संचरुं,
सेंगु कोइ न साथ— अभि० ॥४॥

दर्शन दर्शन रटतो जो फरुं,
तो रण रोझ समान;
जेहने पिपासा हो अमृत पाननी,
किम भांजे विषपान?— अभि० ॥५॥
तरस न आवे हो मरण जीवनतणो,
सीजे जो दर्शन काज;
दरिशण दुर्लभ सुलभ कृपाथकी,
आनंदघन महाराज— अभि० ॥६॥

५–श्री सुमति जिन-स्तवन

(राग–वसंत–केदारा.)

सुमति चरणकज आतम अर्पणा,
दर्पण जेम अविकार; सुज्ञानी,
मति तर्पण बहु सम्मत जाणिये,
परिसर्पण सुविचार. सुज्ञानी—सु०॥१॥
त्रिविध सकल तनुधर गत आतमा,
बहिरातम धुरि भेद; सुज्ञानी.

बीजो अंतर आतम तीसरो,
परमातम अविच्छेद. सुज्ञानी--सु०॥२॥
आतमबुद्धे कायादिक ग्रह्यो,
बहिरातम अघरुप; सुज्ञानी.
कायादिकनो हो साखीधर रह्यो,
अंतर आतम रुप. सुज्ञानी--सु०॥३॥
ज्ञानानंदे हो पूरण पावनो,
वर्जित सकल उपाधि; सुज्ञानी,
अतींद्रिय गुणगणमणि आगरु,
इम परमातम साध. सुज्ञानी--सु०॥४॥
बहिरातम तजी अंतरआतमा,
रुप थइ स्थिरभाव; सुज्ञानी.
परमातमनुं हो आतम भाववुं,
आतम अर्पण दाव. सुज्ञानी--सु०॥५॥
आतम अर्पण वस्तु विचारतां,
भरम टले मति दोष; सुज्ञानी.
परम पदारथ संपत्ति संपजे,
'आनंदघन'रस पोष. सुज्ञानी--सु०॥६॥

६-श्री पद्मप्रभजिन-स्तवन

(राग-मारु-सिंधुडा)

पद्मप्रभ जिन तुज मुज आंतरु रे,
 किम भांजे भगवंत ?
कर्म विपाके कारण जोईने रे,
 कोइ कहे मतिमंत-- पद्म० ॥१॥

पयइ ठिइ अणुभाग प्रदेशथी रे,
 मूल उत्तर बहु भेद;
घाती अघाती हो बंधोदय उदीरणा रे,
 सत्ता कर्म विच्छेद-- पद्म० ॥२॥

कनकोपलवत् पयडि पुरुषतणी रे,
 जोडी अनादि स्वभाव;
अन्य संजोगी जिहां लगे आतमा रे,
 संसारी कहेवाय— पद्म० ॥३॥

कारण जोगे हो बांधे बंधने रे,
 कारण मुगति मूकाय;
आश्रव संवर नाम अनुक्रमें रे,
 हेय ऊपादेय सुणाय— पद्म० ॥४॥

गुंजन कारणे हो अंतर तुज पड्यो रे,
गुण कारणे करी भंग;
ग्रन्थ उक्ते करी पंडितजने कह्यो रे,
अंतर भंग सुअंग— पद्म० ॥५॥
तुज मुज अंतर अंतर भांजशे रे,
वाजशे मंगल तूर;
जीव सरोवर अतिशय वाधशे रे,
'आनंदघन' रसपूर— पद्म० ॥६॥

७–श्री सुपार्श्व जिन–स्तवन

(राग-सारंग–मलार.)

श्रीसुपार्श्वजिन वंदीए,
सुख संपत्तिनो हेतु; ललना.
शांत सुधारस जलनिधि,
भवसागरमां सेतु. ललना—श्रीसु०॥१॥
सात महाभय टालतो,
सप्तम जिनवर देव ललना.

सावधान मनसा करी,
धारो जिनपद सेष. ललना- श्री०॥२॥
शिव शंकर जगदीश्वरु,
चिदानंद भगवान; ललना.
जिन अरिहा तीर्थंकरु,
ज्योतीस्वरुप असमान ललना-श्री०॥३॥
अलख निरंजन वच्छलु,
सकल जंतु विसराम, ललना.
जभयदान दाता सदा,
पूरण आतमराम. ललना- श्री०॥४॥
वीतराग मत कल्पना,
रति अरति भय सोग; ललना.
निद्रा तंद्रा दुरंदशा,
रहित अबाधित योग. ललना-श्री०॥५॥
परम पुरुष परमातमा,
परमेश्वर परधान; ललना.
परम पदारथ परमेष्ठी,
परमदेव परमान. ललना- श्री०॥६॥

विधि विरंचि विश्वंभरु,
हृषीकेश जगनाथ; ललना.
अघहर अघमोचन धणी,
मुक्ति परमपद साथ. ललना-श्री०॥७॥
इम अनेक अभिधा धरे,
अनुभवगम्य विचार; ललना.
जे जाणे तेहने करे,
'आनंदघन' अवतार. ललना-श्री०॥८॥

८ श्रीचंद्रप्रभ जिन स्तवन

(राग–केदारा–गोड़)

देखण दे रे सखी मुने देखण दे,
चंद्रप्रभ मुखचंद, सखी०
उपशम रसनो कंद, सखी०
गत कलिमल दुखदंद, सखी० चंद्र०॥१॥
सूक्षम निगोदे न देखीओ, सखी०
बादर अतिहि विशेष, सखी०

पुढवी आउ न लेखियो, सखी०
तेउ वाउ न लेश. सखी० चंद्र०॥२॥
वनस्पति अति घण दिहा, सखी०
दीठो नहीं दीदार; सखी०
बि ति चउरिंदिय जललीहा, सखी०
गतसन्नी पण धार. सखी० चंद्र०॥३॥
सुर तिरि निरय निवासमां, सखी०
मनुज अनारज साथ; सखी०
अपज्जत्ता प्रतिभासमां, सखी०
चतुर न चढीओ हाथ. सखी० चंद्र०॥४॥
एम अनेक थल जाणीए, सखी०
दर्शन विणु जिनदेव; सखी०
आगमथी मत जाणीए, सखी०
कीजे निर्मल सेव. सखी० चंद्र०॥५॥
निर्मल साधु भक्ति लही, सखी०
योग अवंचक होय; सखी०
क्रिया अवंचक तिम सही, सखी०
फल अवंचक जोय. सखी० चंद्र०॥६॥

प्रेरक अवसर जिनवरु, सखी०
मोहनीय क्षय जाय; सखी०
कामित पूरण सुरतरु, सखी०
'आनंदघन' प्रभु पाय. सखी० चंद्र०॥७॥

९ श्रीसुविधि जिन स्तवन

(राग–केदारा)

सुविधि जिणेसर पाय नमीने,
शुभ करणी एम कीजे रे;
अति घणो उलट अंग धरीने,
प्रह उठी पूजीजे रे– सुविधि०॥१॥

द्रव्य भाव शुचि भाव धरीने,
हरखे देहरे जइए रे;
दह तिग पण अहिगम साचवतां,
एकमना धुरि थइए रे– सुविधि०॥२॥

कुसुम अक्षत वर वास सुगंधी,
धूप दीप मन साखी रे;

अंगपूजा पण भेद सुणी एम,
गुरुमुख आगम भाखी रे-सुविधि०॥३॥
एहनुं फल दोय भेद सुणीजे,
अनंतर ने परंपर रे;
आणापालण चित्तप्रसन्नी,
मुगति सुगति सुरमंदिर रे-सुविधि०॥४॥
फूल अक्षत वर धूप पइवो,
गंध नैवेध फल जल भरी रे;
अंगअग्रपूजा मळी अडविध,
भावे भविक शुभ गति वरीरे सुविधि०॥५
सत्तर भेद एकवीश प्रकारे,
अट्ठोत्तर शत भेदे रे;
भावपूजा बहुविध निरधारो,
दोहग्ग दुर्गति छेदे रे- सुविधि०॥६॥
तुरियभेद पडिवत्ति पूजा,
उपशम खीण सयोगी रे;
चउहा पूजा इम उत्तराज्झयणे,
भाखी केवळ योगी रे- सुविधि०॥७॥

एम पूजा बहु भेद सुणीने,
सुखदायक शुभ करणी रे;
भविक जीव करशे ते लेशे,
'आनंदघन'-पद धरणी रे-सुविधि०॥८॥

१०—श्रीशीतल जिन-स्तवन

(राग-धनाश्री-गौड़)

शीतल जिनपति ललित त्रिभंगी,
विविध भंगी मन मोहे रे;
करुणा कोमलता तीक्षणता,
उदासीनता सोहे रे- शीत०॥१॥
सर्व जंतु हितकरणी करुणा,
कर्म विदारण तीक्षण रे;
हानादान रहित परिणामी,
उदासीनता वीक्षण रे- शीत०॥२॥
पर दुःख छेदन इच्छा करुणा,
तीक्षण पर दुःख रीझे रे;

उदासीनता उभय विलक्षण,
एक ठामे केम साजे रे?–शीतल०॥३॥

अभयदान ते मलक्षय करुणा,
तीक्षणता गुण भावे रे;
प्रेरक विण कृति उदासीनता,
एम विरोध मति नावे रे–शीतल०॥४॥

शक्ति व्यक्ति त्रिभुवन प्रभुता,
निर्ग्रंथता संयोगे रे;
योगी भोगी वक्ता मौनी,
अनुपयोगी उपयोगे रे– शीतल०॥५॥

इत्यादिक बहुभंग त्रिभंगा,
चमत्कार चित्त देती रे;
अचरजकारी चित्र विचत्रा,
'आनंदघन'–पद लेती रे– शीतल०॥६॥

११—श्री श्रेयांस जिन-स्तवन

(राग-गोड़.)

श्री श्रेयाँस जिन अंतरजामी,
आतमरामी नामी रे,
अध्यातम मत पूरण पामी,
सहज मुक्तिगति गामी रे-श्री श्रे०॥१॥
सयल संसारी इंद्रियरामी,
मुनि गुण आतमरामी रे;
मुख्यपणे जे आतरामी,
ते केवल निःकामी रे- श्री श्रे०॥२॥
निज स्वरुप जे किरिया साधे,
तेह अध्यातम लहिये रे;
जे किरिया करी चउगति साधे,
ते न अध्यातम कहिये रे-श्री श्रे०॥३॥
नाम अध्यातम ठवण अध्यातम,
द्रव्य अध्यातम छंडो रे;
भाव अध्यातम निजगुण साधे,
तो तेहशुं रढ मंडो रे- श्री श्रे० ॥४॥

शब्द अध्यातम अर्थ सुणीने,
निर्विकल्प आदरजो रे;
शब्द अध्यातम भजना जाणो,
हान ग्रहण मति धरजो रे- श्री श्रे०॥५॥
अध्यातमी जे वस्तु विचारी,
बीजा बधा लबासी रे;
वस्तुगते जे वस्तु प्रकाशे,
'आनंदघन' मत वासी रे- श्री श्रे०॥६॥

१२—श्री वासुपूज्य जिन-स्तवन

(राग-गोडी तथा परज)

वासुपूज्य जिन त्रिभुवन स्वामी,
घननामी परनामी रे;
निराकार साकार सचेतन,
करम करम फल कामी रे- वासु०॥१॥
निराकार अभेद संग्राहक,
भेदग्राहक साकारो रे;

दर्शन ज्ञान दुभेद चेतना,
वस्तु ग्रहण व्यापारो रे- वासु०॥२॥
कर्त्ता परिणामी परिणामो,
कर्म के जोव करिये रे;
एक अनेक रुप नयवादे,
नियते नर अनुसरिये रे- वासु०॥३॥
दुःख-सुख रुप कर्मफल जाणो,
निश्चय एक आनंदो रे;
चेतनता परिणाम न चूके,
चेतन कहे जिनचंदो रे- वासु०॥४॥
परिणामी चेतन परीणामो,
ज्ञान कर्मफल भावी रे;
ज्ञान कर्म फल चेतन कहीए,
लेजो तेह मनावी रे- वासु०॥५॥
आतमज्ञानी श्रमण कहावे,
बीजा तो द्रव्यलिंगी रे;
वस्तुगते जे वस्तु प्रकाशे,
'आनंदघन'-मत संगी रे- वासु०॥६॥

१३—श्री विमल जिन—स्तवन

(राग—मलार)

ुःख दोहग्ग दूरे टल्यारे, सुख संपदशुं भेंट;
ींग धणी माथे कियो रे, कोण गंजे नरखेट ?
वेमलजिन दीठां लोयण आज,
मारां सिध्यां वांछित काज—वि० दी०॥१॥

ारणकमल कमला वसे रे, निर्मल स्थिरपद देख;
ामल अस्थिर पद परिहरे रे,
पंकज पामर पेख— वि० दी० ॥२॥

ुज मन तुज पदपंकजे रे,लीनो गुण मकरंद;
ंक गणे मंदर-धरा रे,
इन्द्र चंद्र नागेंद्र— वि० दी० ॥३॥

ाहेब ! समरथ तुं धणी रे, पाम्यो परम उदार;
मन विसरामी वालहो रे,
आतमचो आधार— वि० दी० ॥४॥

रिशण दीठे जिनतणो रे, संशय न रहे वेध;
िनकर करभर पसरता रे,
अंधकार प्रतिषेध— वि० दी० ॥५॥

अमीय भरी मूरति रची रे, उपमा न घटे कोय;
शांत सुधारस झीलती रे,
निरखत तृप्ति न होय—वि० दी० ॥६॥
एक अरज सेवकतणी रे, अवधारो जिनदेव;
कृपा करी मुज दीजिये रे,
'आनंदघन' पद सेव— वि० दी० ॥७॥

१४—श्री अनंत जिन-स्तवन

(राग-रामग्री-कडखा.)

धार तरवारनी सोहिली दोहिली,
चउदमा जिनतणी चरणसेवा;
धारपर नाचता देख बाजोगरा,
सेवना-धारपर रहे न देवा—धा० ॥१॥
एक कहे सेविये विविध किरिया करी,
फल अनेकांत लोचन न देखे;
फल अनेकांत किरिया करी बापड़ा,
रड़वडे चार गतिमांहे लेखे—धा० ॥२॥

गच्छना भेद बहु नयण निहालतां,
तत्त्वनी वात करतां न लाजे;
उदरभरणादि निज काज करता थका,
मोह नड़िया कलिकाल राजे—धा०॥३॥
वचन निरपेक्ष व्यवहार जूठो कह्यो,
वचन सापेक्ष व्यवहार साचो;
वचन निरपेक्ष व्यवहार संसार फल,
सांभली आदरी कांइ राचो—धा०॥४॥
देव गुरु धर्मनी शुद्धि कहो केम रहे ?
केम रहे शुद्ध श्रद्धान आणो,
शुद्ध श्रद्धान विण सर्व किरिया करी,
छारपर लींपणु तेह जाणो—धा०॥५॥
पाप नहीं कोइ उत्सूत्र भाषण जिस्यो,
धर्म नहीं कोइ जग सूत्र सरिखो;
सूत्र अनुसार जे भविक करिया करे,
तेहनुं शुद्ध चारित्र परिखो—धा०॥६॥
यह उपदेशनो सार संक्षेपथी,
जे नरा चित्तमां नित्य ध्यावे;

ते नरा दिव्य बहु काल सुख अनुभवी,
नियत 'आनंदघन' राज पावे धा०॥७॥

१५—श्री धर्मजिन-स्तवन

(राग—गोडी.)

धर्म जिनेश्वर गाउं रंगशुं,
भंग म पड़शो हो प्रीत. जिनेश्वर,
बीजो मनमंदिर आणुं नहीं,
ए अम कुलवट रीत. जिने० धर्म० १
धरम धरम करतो जग सहु फरे,
धरम न जाणे हो मर्म. जिने०
धरम जिनेश्वर चरण ग्रह्या पछी,
कोइ न बांधे हो कर्म. जिने० धर्म०॥२॥
प्रवचन अंजन जो सद्गुरु करे,
देखे परम निधान; जिने०
हृदय नयण निहाले जगधणी,
महिमा मेरु समान. जिने. धर्म०॥३॥

दोडत दोडत दोडत दोडियो,
जेती मननी रे दोड; जिने०
प्रेम प्रतीत विचारो ढूकडी,
गुरुगम लेजो रे जोड. जिने. धर्म०॥४॥
एक पखी केम प्रीति परपडे ?
उभय मिल्या होय संधि; जिने०
हूं रागी हूं मोहे फंदियो,
तू निरागी निरबंद. जिने. धर्म०॥५॥
परम निधान प्रगट मुख आगले,
जगत उल्लंघी हो जाय; जिने०
ज्योति विना जुओ जगदीशनी,
अंधोअंध पुलाय. जिने. धर्म०॥६॥
निर्मल गुणमणि रोहण भूधरा,
मुनिजन मानस हंस; जिने०
धन्य ते नगरी धन्य वेला घडी,
माता पिता कुल वंश. जिने. धर्म०॥७॥
मन मधुकर वर कर जोडी कहे,
पदकज निकट निवास; जिने०

घननामी 'आनंदघन' सांभलो,
　　ए सेवक अरदास जिने.　　धर्म०॥८॥

१६–श्री शांतिजिन–स्तवन

(मलार.)

शांति जिन एक मुज विनति,
　　सुणो त्रिभुवन राय रे;
शांति स्वरुप केम जाणिये ?
　　कहो मन केम परखाय रे ?–शांति० ॥१॥
धन्य तुं आतम जेहने,
　　एहवो प्रश्न अवकाश रे;
धीरज मन धरी सांभलो,
　　कहुं शांति प्रतिभाश रे– शांति० ॥२॥
भाव अविशुद्ध सुविशुद्ध जे,
　　कह्या जिनवर देव रे;
ते तेम अवितत्थ सद्दहे,
　　प्रथम ए शांतिपद सेवे रे–शांति० ॥३॥

आगमधर गुरु समकिती,
किरिया संवर सार रे;
संप्रदायी अवंचक सदा,
शुचि अनुभवाधार रे- शांति० ॥४॥

शुद्ध आलंबन आदरे,
तजी अवर जंजाल रे;
तामसी वृत्ति सवि परिहरी,
भजे सात्त्विक साल रे- शांति० ॥५॥

फल विसंवाद जेहमां नहीं,
शब्द ते अर्थ संबंधि रे;
सकल नयवाद व्यापी रह्यो,
ते शिव साधन संधि रे- शांति० ॥६॥

विधि प्रतिषेध करी आतमा,
पदारथ अविरोध रे;
ग्रहण विधि महाजने परिग्रह्यो,
इस्यो आगमे बोध रे- शांति० ॥७॥

दुष्ट जन संगति परिहरी,
भजे सुगुरु संतान रे;

जोग सामर्थ्य चित्त भाव जे,
धरे मुगति निदानरे—शांति० ॥८॥
मान अपमान चित्त सम गणे,
सम गणे कनक पाषाण रे;
वंदक निंदक सम गणे,
इस्यो होय तू जाण रे— शांति० ॥९॥
सर्व जगजंतुने सम गणे,
गणे तृण मणि भाव रे;
मुक्ति संसार बेहु सम गणे,
मुणे भवजलनिधि नाव रे शांति० ॥१०॥
आपणो आतमभाव जे,
एक चेतनाधार रे;
अवर सवि साथ संयोगथी,
एह निज परिकर सार रे—शांति०॥११॥
प्रभुमुखथी एम सांभली,
कहे आतमराम रे;
ताहरे दरिशणे निस्तर्यो,
मुज सिध्यां सवि काम—शांति०॥१२॥

अहो ! अहो ! हुं मुजने कहुं,
नमो मुज नमो मुज रे;
अमित फल दान दातारनी
जेहनी भेंट थइ तुज रे—शांति०॥१३॥
शांति स्वरुप संक्षेपथी,
कह्यो निज पर रुप रे;
आगममांहे विस्तार घणो,
कह्यो शांति जिनभूप रे—शांति०॥१४॥
शांति स्वरुप एम भावशे,
धरी शुद्ध प्रणिधान रे;
'आनंदघन' पद पामशे,
ते लहेशे बहुमान रे— शांति०॥१५॥

१७–श्रीकुंथुजिन–स्तवन

(गुर्जरी-रामकळी)

कुंथुजिन ! मनडुं किमही न बाझे हो कुंथुजिन,
मनडुं किमही न बाझे;

जिम जिम जतन करीने राखुं,
तिम तिम अलगुं भाजे हो—कुंथु०॥१॥
रजनी वासर वसति उज्जड,
गयण पायाले जाय;
साप खाये ने मुखडुं थोथुं,
एह उखाणो न्याय हो—- कुंथु० ॥२॥
मुगतितणा अभिलाषो तपिया,
ज्ञान ने ध्यान अभ्यासे;
वयरीडुं कांइ एहेवुं चिंते,
नांखे अवले पासे हो— कुंथु० ॥३॥
आगम आगमधरने हाथे,
नावे किणविधि आंकुं;
किहां कणे जो हठ करी हटकुं,
तो व्यालतणी परे वांकुं हो—कुंथु० ॥४॥
जो ठग कहुं तो ठगतो न देखुं,
साहुकार पण नांहि;
सर्वमाहे ने सहुथी अलगुं,
ए अचरिज मनमांही हो— कुंथु० ॥५॥

जे जे कहुं ते कान न धारे,
आप मते रहे कालो;
सुर नर पंडित जन समजावे,
समजे न मारो सालो हो—कुंथु० ॥६॥

में जाण्युं ए लिंग नपुंसक,
सकल मरदने ठेले;
बीजी वाते समरथ छे नर,
एहने कोइ जेले हो— कुंथु० ॥७॥

मन साध्युं तेणे सघलुं साध्युं,
एह वात नहीं खोटी;
एम कहे साध्युं ते नवि मानुं,
ए कही वात छे मोटी हो—कुंथु० ॥८॥

मनडुं दुराराध्य तें वश आण्युं,
ते आगमथी मति आणुं;
'आनंदघन' प्रभु माहरुं आणो,
तो साचुं करी जाणुं हो—कुंथु० ॥९॥

१८-श्री अरजिन-स्तवन

(परज-मारुं.)

धरम परम अरनाथनो,
केम जाणुं भगवंत रे ?
स्व पर समय समजावीए,
महिमावंत महंत रे— ध० ॥१॥

शुद्धातम अनुभव सदा,
स्व समय एह विलास रे;
परबडी छांहडी जे पडे,
ते परसमय निवास रे— ध० ॥२॥

तारा नक्षत्र ग्रह चंदनी,
ज्योति दिनेश मोझार रे;
दर्शन ज्ञान चरणथकी,
शक्ति निजातम धार रे— ध० ॥३॥

भारी पीलो चीकणो,
कनक अनेक तरंग रे;
पर्याय दृष्टि न दीजीए,
एक ज कनक अभंग रे— ध० ॥४॥

दर्शन ज्ञान चरण थकी,
    अलख स्वरुप अनेक रे,
निर्विकल्प रस पीजीए,
    शुद्ध निरंजन एक रे— घ० ॥५॥

परमारथ पंथ जे कहे,
    ते रंजे एक तंत रे;
व्यवहारे लख जे रहे,
    तेहना भेद अनंत रे— घ० ॥६॥

व्यवहारे लख दोहिलो,
    कांइ न आवे हाथ रे;
शुद्ध नय थापना सेवतां,
    नवि रहे दुविधा साथ रे— घ० ॥७॥

एक पखी लख प्रीतनी,
    तुम साथे जगनाथ रे;
कृपा करीने राखजो,
    चरण तले ग्रहो हाथ रे— घ० ॥८॥

चक्री धरम तीरथतणो,
तीरथ फल तत्त सार रे;
तीरथ सेवे ते लहे,
'आनंदघन' निरधार रे— ध० ॥९॥

१९–श्री मल्लिजिन–स्तवन

(राग-काफी)

सेवक केम अवगणिये हो मल्लिजिन !
ए अब शोभा सारी;
अवर जेहने आदर अति दीये,
तेहने मूल निवारी हो—मल्लि० ॥१॥
ज्ञानस्वरुप अनादि तमारुं,
ते लीधुं तमे ताणी;
जुओ अज्ञानदशा रीसावी,
जातां काण न आणी हो—मल्लि०॥२॥
निद्रा सुपन जागर उजागरता,
तुरिय अवस्था आवी;

निद्रा सुपन दशा रीसाणी,
 जाणी न नाथ मनावी हो—मल्लि० ॥३॥
समकित साथे सगाई कीधी,
 सपरिवारसुं गाढी;
मिथ्यामति अपराधण जाणी,
 घरथी बाहिर काढी हो—मल्लि० ॥४॥
हास्य अरति रति शोक दुगंछा,
 भय पामर करसाली;
नोकषाय श्रेणि गज चढतां,
 श्वानतणी गति झाली हो—मल्लि० ॥५॥
रागद्वेष अविरतिनी परिणति,
 ए चरणमोहना योधा;
वीतराग परिणति परिणमतां,
 उठी नाठा बोधा हो—मल्लि० ॥६॥
वेदोदय कामा परिणामा,
 काम्य कर्म सहु त्यागी;

निःकामा करुणारससागर,
अनंत चतुष्क पद पागो हो—मल्लि० ॥७॥
दान विघन वारी सहु जनने,
अभयदान पद दाता;
लाभ विघन जग विघन निवारक,
परम लाभ रस माता हो—मल्लि० ॥८॥

वीर्य विघन पंडित वीर्यें हणी,
पूरण पदवी योगी;
भोगोपभोग दोय विघन निवारी,
पूरण भोग सुभोगी हो—मल्लि० ॥९॥

ए अढार दूषण वरजीत तनु,
मुनिजन-वृंदे गाया;
अविरति रुपक दोष निरुपण,
निर्दूषण मन भाया हो—मल्लि० ॥१०॥

इण विध परखी मन विसरामी,
जिनवर गुण जे गावे;

दीनबंधुनी महेर नजरथी,
'आनंदघन'-पद पावे हो—मल्लि० ॥११॥

२०-श्री मुनिसुव्रतजिन-स्तवन

(राग-काफी)

मुनिसुव्रत जिनराज !
एक मुज विनति निसुणो, मु०
आतमतत्त्व क्युं जाण्युं ? जगत्गुरु !,
एह विचार मुज कहियो;
आतमतत्त्व जाण्याविण निर्मळ,
चित्तसमाधि नवि लहियो— मु० ॥१॥
कोइ अबंध आतमतत्त माने,
किरिया करतो दीसे;
क्रियातणुं फल कहो कुण भोगवे ?
इम पूछ्युं चित्त रीसे— मु० ॥२॥
जड़ चेतन ए आतम एकज,
स्थावर जंगम सरिखो;

सुख दुःख संकट दूषण आवे,
चित्त विचारजो परिखो— मु० ॥३॥
एक कहे नित्यज आतमतत्त्व,
आतम दरशण लीनो;
कृतविनाश अकृतागम दूषण,
नवि देखे मतिहीणो— मु० ॥४॥
सौगत मति रागी कहे वादी,
क्षणिक ए आतम जाणो;
बंध मोक्ष सुख दुःख नवि घटे,
एह विचार मन आणो— मु० ॥५॥
भूत चतुष्क वर्जित आतमतत्त्व,
सत्ता अलगी न घटे;
अंध शकट जो नजरे न देखे,
तो शुं कीजे शकटे?— मु० ॥६॥
एम अनेक वादी मत-विभ्रम,
संकट पडियो न लहे;
चित्त समाधि ते माटे पूछुं,
तुम विण तत्त्व कोइ न कहे—मु० ॥७॥

वळतुं जगगुरु इणिपरे भाखे,
पक्षपात सब छंडी;
राग द्वेष मोह पख वर्जित,
आतमसुं रढ मंडी— मु० ॥८॥
आतम ध्यान करे जो कोउ,
सो फिर इणमें नावे;
वाग्जाल बीजुं सहु जाणे,
एह तत्त्व चित्त चावे— मु० ॥९॥
जेणे विवेक धरी ए पख ग्रहियो,
ते तत्त्वज्ञानी ! कहिये;
श्रीमुनिसुव्रत ! कृपा करो तो,
'आनंदघन'-पद लहिये— मु० ॥१०॥

२१-श्री नमिजिन-स्तवन

(राग-आशावरी)

षड् दर्शन जिन-अंग भणीजे,
न्यास षडंग जो साधे रे;

नमि जिनवरना चरण उपासक,
षड्दरशन आराधे रे— षड्० ॥१॥

जिन सुर पादप पाय वखाणुं,
सांख्य जोग दोय भेदे रे;
आतम-सत्ता विवरण करता,
लहो दुग अंग अखेदे रे—षड्० ॥२॥

भेद अभेद सुगत मिमांसक,
जिनवर दोय कर भारी रे;
लोकालोक अवलंबन भजिये,
गुरुगमथी अवधारी रे— षड्० ॥३॥

लोकायति कूख जिनवरनी,
अंश विचार जो कीजे रे;

तत्त्व-विचार जो कीजे रे;
गुरुगमविण किम पीजे रे?— षड्० ॥४॥

जैन जिनेश्वर वर उत्तम अंग,
अंतरंग बहिरंगे रे;

अक्षर न्यास धरा आराधक,
आराधे धरी संगे रे— षड्० ॥५॥
जिनवरमां सघळा दर्शन छे,
दर्शने जिनवर भजना रे;
सागरमां सघळी तटिनी सही,
तटिनीमां सागर भजना रे—षड्० ॥६॥
जिनस्वरुप थइ जिन आराधे,
ते सही जिनवर होवे रे,
भृंगी इलिकाने चटावे,
ते भृंगी जग जोवे रे— षड्० ॥७॥
चूर्णि भाष्य सूत्र निर्युक्ति,
वृत्ति परंपर अनुभव रे;
समय-पुरुषना अंग कह्यां ए,
जे छेदे ते दुर्भव रे— षड्० ॥८॥
मुद्रा बीजधारणा अक्षर-,
न्यास अर्थ विनियोगे रे;

जे ध्यावे ते नवि वंचीजे,
क्रिया अवंचक भोगे रे— षड्० ॥९॥
श्रुत अनुसार विचारी बोलुं,
सुगुरु तथाविध न मिले रे;
किरिया करी नवि साधि शकिये,
ए विषवाद चित्त सघले रे—षड्० ॥१०॥
ते माटे उभो कर जोड़ी,
जिनवर आगळ कहिये रे,
समय चरण सेवा शुद्ध देजो,
जिम 'आनंदघन' लहिये रे—षड्०॥११॥

२२—श्री नेमिनाथजिन—स्तवन

(राग-मारुणि.)

अष्ट भवांतर वालही रे,
तुं मुज आतमराम; मनरावाल्हा;
मुगति स्त्रीशुं आपणे रे,
सगपण कोइ न काम— मन० ॥१॥

घर आवो हो वालिम घर आवो,
    मारी आशाना विश्राम; मन०
रथ फेरो हो साजन रथ फेरो,
    साजन ! मारा मनोरथ साथ—मन०॥२॥

नारी पखो श्यो नेहलो रे ?
    साच कहे जगनाथ; मन०
ईश्वर अरधांगे धरी रे,
    तुं मुझ झाले न हाथ.   मन० ॥३॥

पशुजननी करुणा करी रे,
    आणी हृदय विचार; मन
माणसनी करुणा नहीं रे !
    ए कुण घर आचार ?—   मन० ॥४॥

प्रेम कल्पतरु छेदियो रे;
    धरियो योग धतूर; मन०
चतुराइरो कुण कहो रे,
    गुरु मिलियो जग सूर—   मन० ॥५॥

मारुं तो पमां कंइ नहीं रे,
आप बिचारो राज; मन०
राजसभामें बेसतां रे.
किसड़ी बधसी लाज ? मन० ॥६॥

प्रेम करे जगजन सहु रे,
निरवाहे ते ओर, मन०
प्रीत करीने छोडी दे रे,
तेसुं न चाले जोर-- मन० ॥७॥

जो मनमां पहवुं हतु रे,
निसपति करत न जाण मन०
निसपति करीने छांडता रे,
माणस हुये नुकसाण- मन० ॥८॥

देतां दान संवत्सरी रे,
सहु लहे वंछित पोष, मन०
सेवक वंछित नवि लहे रे,
ते सेवकनो दोष- मन० ॥९॥

सखी कहे ए सामलो रे,
    हुं कहुं लक्षण सेत; मन०
इण लक्षण साची सखी रे,
    आप विचारो हेत. मन० ॥१०॥

रागासुं रागी सहु रे,
    वैरागी श्यो राग? मन०
राग विना किम दाखवो रे?
    मुगति-सुंदरी माग. मन० ॥११॥

एक गुह्य घटतुं नथी रे,
    सघलो जाणे लोक; मन०
अनेकांतिक भोगवो रे,
    ब्रह्मचारी गतरोग- मन० ॥१२॥

जिण जोणी तुमने जोउं रे,
    तिण जोणी जुवो राज; मन०
एक वार मुजने जुवो रे,
    तो सीजे मुज काज- मन० ॥१३॥

मोहदशा धरी भावना रे,
    चित्त लहे तत्त्वविचार; मन०
वीतरागता आदरी रे,
    प्राणनाथ! निरधार- मन० ॥१४॥

सेवक पण ते आदरे रे,
    तो रहे सेवक माम; मन०
आशय साथे चालिये रे,
    एहीज रुडुं काम- मन० ॥१५॥

त्रिविध योग धरी आदर्यो रे,
    नेमनाथ भरतार, मन०
धारण पोषण तारणो रे,
    नव-रस मुगताहार- मन० ॥१६॥

कारणरुपी प्रभु भज्यो रे,
    गण्यो न काज अकाज; मन०
कृपा करी मुज दीजीए रे,
    'आनंदघन'पद-राज- मन० ॥१७॥

२३–श्रीपार्श्वजिन–स्तवन

(राग–सारंग)

ध्रुव पद रामी हो स्वामी ! माहरा,
निःकामी गुणराय; सुज्ञानी,
निजगुण कामी हो पामी तु घणो,
ध्रुव आरामी हो थाय. सुज्ञानी- ॥१॥
सर्वव्यापी कहे सर्व जाणगपणे,
पर परिणमन स्वरुप, सुज्ञानी.
पररुपे करी तत्त्वपणुं नहीं,
स्व सत्ता चिद्रुप. सुज्ञानी० ॥२॥
ज्ञेय अनेके हो ज्ञान अनेकता,
जल-भाजन रवि जेम; सुज्ञानी.
द्रव्य एकत्वपणे गुण एकता,
निजपद रमता हो खेम. सुज्ञानी० ॥३॥
पर क्षेत्रे गत ज्ञेयने जाणवे,
परक्षेत्रे थयुं ज्ञान; सुज्ञानी.

अस्तिपणुं निजक्षेत्रे तुमे कह्यो,
निर्मलता गुमान. सुज्ञानी ॥४॥
ज्ञेय विनाशे हो ज्ञान विनश्वरु,
काल प्रमाणे रे थाय; सुज्ञानी.
स्वकाले करी स्वसत्ता सदा,
ते पर रीते न जाय. सुज्ञानी० ॥५॥
परभावे करी परता पामता,
स्वसत्ता थिरठाण; सुज्ञानी.
आत्म चतुष्कमयी परमां नहीं,
तो यिम सहुनो रे जाण ? सुज्ञानी०॥६॥
अगुरुलघु निज गुणने देखतां,
द्रव्य सकल देखंत; सुज्ञानी.
साधारण गुणनी साधर्म्यता,
दर्पण जल दृष्टांत- सुज्ञानी० ॥७॥
श्री पारस जिन पारस रस समो,
पण इहां पारस नहीं; सुज्ञानी.

पुरण रसियो हो निज गुणपरसनो,
    'आनंदघन' मुज मांहि॰ सुज्ञानी॰ ॥८॥

२४–श्रीमहावीरजिन–स्तवन

(राग–धनाश्री)

वीरजीने चरणे लागुं,
    वीरपणुं ते मागुं रे;
मिथ्या मोह तिमिर भय भागुं,
    जित नगारूं वाग्युं रे– वीर॰॥१॥
छउमथ्य वीर्य लेस्या संगे,
    अभिसंधिज मति अंगे रे;
सूक्ष्म मूल क्रियाने रंगे,
    योगी थयो उमंगे रे– वीर॰॥२॥
असंख्य प्रदेशे वीर्य असंखे,
    योग असंखित कंखे रे;
पुद्‌गल गण तेणे लेशु विशेषे,
    यथाशक्ति मति लेखे रे– वीर॰॥३॥

उत्कृष्टे वीर्यने वेसे,
योग क्रिया नवि पेसे रे;
योगीत ध्रुवताने लेसे,
आतमशक्ति न खसे रे- वीर०॥४।

काम वीर्य वशे जिम भोगी,
तेम आतम थयो भोगी रे;
सुरपणे आतम उपयोगी,
थाय तेह अयोगी रे- वीर०॥५॥

वीरपणुं ते आतम ठाणे,
जाण्युं तुमची वाणे रे;
ध्यान विज्ञाणे शक्ति प्रमाणे,
निज ध्रुव पद पहिचाणे रे- वीर०॥६॥

आलंबन साधन जे त्यागे,
पर परिणतिने भागे रे,
अक्षय दर्शन ज्ञान वैरागे,
'आनंदघन' प्रभु जागे रे- वीर०॥७॥

॥ ॐ अर्हम् ॥

श्रीमद् देवचंद्र-चौबीशी

१-श्रीऋषभजिन-स्तवन

(निद्रडी वेरण हुइ रही-यह देशी)

ऋषभ जिणंदसुं प्रीतड़ी,
किम किजे हो कहो चतुर विचार;
प्रभुजी जइ अलगा वश्या,
तिहां कणे नवि हो कोई वचन उच्चार ॥१॥

कागल पण पहोंचे नहिं,
नवि पहोंचे हो तिहां को परधान;
जे पहोंचे ते तुम समो,
नवि भाखे हो कोनो व्यवधान ॥२॥

प्रीति करे ते रागिया,
जिनवरजी हो तुमे तो वीतराग,

प्रीतड़ी जेह अरागीथी,

मेलववी ते हो लोकोत्तर माग. ॥३॥

प्रीति अनादिनी विष भरी,

ते रीते हो करवा मुज भाव;

करवी निर्विष प्रीतड़ी,

किण भातें हो कहो बने बनाव. ॥४॥

प्रीति अनंती पर थकी,

जे तोडे हो ते जोडे एह;

परम पुरुषथी रागता,

एकत्वता हो दाखी गुण गेह. ॥५॥

प्रभुजीने अवलंबता,

निज प्रभुता हो प्रगटे गुणराश;

'देवचंद्र'नी सेवना,

आपे मुजे हो अविचल सुखवास. ॥७॥

२—श्री अजितजिन—स्तवन

(देखो गति दैवनीरे-यह देशी)

ानादिक गुण संपदा रे,
तुज अनंत अपार;
ा सांभलतां उपनी रे,
रुचि तेणे पार उतार;
प्रजित जिन तारजो रे,
तारजो दीन दयाल. अ०॥१॥
ा जे कारण जेहनुं रे,
सामग्री संयोग;
ालतां कारज नीपजे रे,
करता तणे प्रयोग. अ०॥२॥
ार्य सिद्धि कर्ता वसु रे,
लही कारण संयोग;
नेजपद कारक प्रभु मल्या रे,
होय निमित्त हर्षभोग अ०॥३॥

अजकुलगत केशरी लहे रे,
निजपद सिंह निहाल;
तिम प्रभु भक्तें भवि लहे रे,
आतम शक्ति संभाल. अ०॥४॥

कारण पद कर्त्तापणें रे,
करी आरोप अभेद;
निजपद अर्थी प्रभु थकी रे,
करे अनेक उमेद. अ०॥५॥

एहवा परमातम प्रभु रे,
परमानंद स्वरुप;
स्याद्वाद सत्ता रसी रे,
अमल अखंड अनुप. अ०॥६॥

अरोपित सुख भ्रम टल्यो रे,
भास्यो अव्याबाध;
समर्युं अभिलाषीपणुं रे,
कर्ता साधन साध्य. अ०॥७॥

ग्राहकता स्वामित्वता रे,
    व्यापक भोक्ता भाव;
कारणता कारज दशा रे,
    सकल ग्रह्युं निज भाव. अ०॥८॥
श्रद्धा भासन रमणता रे,
    दानादिक परिणाम;
सकल थया सत्ता रसी रे,
    जिनवर दर्शन पाम अ०॥९॥
तेणे निर्यामक माहणो रे,
    वैद्य गोप आधार,
'देवचंद्र' सुख सागरु रे,
    भाव धर्म दातार. अ०॥१०॥

३—श्री संभव जिन-स्तवन

(घरना रे ढोला—यह देशी)

श्री संभव जिनराजजी रे,
    ताहरुं अकल स्वरुप; जिनवर पूजो.

स्वपरप्रकाशक दिनमणि रे,
समता रसनो भूप. जिनवर पूजो.
पूजो पूजो रे भविक जिन पूजो,
हांरे प्रभु पूज्या परमानंद. जिन० ॥१॥

अविसंवाद निमित्त छो रे,
जगत जंतु सुखकाज; जिनवर पूजो.
हेतु सत्य बहुमानथी रे,
जिन सेव्या शिवराज- जिन० ॥२॥

उपादान आतम सही रे,
पुष्टालंबन देव; जिनवर पूजो.
उपदान कारणपणे रे,
प्रगट करे प्रभु सेव. जिन० ॥३॥
कार्य गुण कारणपणे रे,
कारण कार्य अनुप; जिनवर पूजो. ॥४॥

सकल सिद्धता ताहरी रे,
माहरे साधन रुप- जिन० ॥५॥

एकवार प्रभु वंदना रे,
    आगम रीते थाय; जिनवर पूजो.
कारण सत्ये कार्यनी रे,
    सिद्धि प्रतीत कराय- जिन० ॥५॥

प्रभुपणे प्रभु ओलखी रे,
    अमल विमल गुणगेह; जि०
साध्य दृष्टि साधकपणे रे,
    वंदे धन्य नर तेह-- जि० ॥६॥

जन्म कृतारथ तेहनो रे,
    दिवस सफल पण तास; जि०
जगत शरण जिन चरणने रे,
    वंदे धरी य उल्लास जि० ॥७॥

निज सत्ता निज भावथी रे,
    गुण अनंतनुं ठाण; जि०
'देवचंद्र' जिनराजजी रे,
    शुद्ध सिद्ध सुख खाण-- जि० ॥८॥

४ श्री अभिनंदनजिन स्तवन

(ब्रह्मचर्य पद पूजिये-ए देशी)

क्युं जाणुं क्युं बनी आवशे,
अभिनंदन रस रीत हो मित्त;
पुद्गल अनुभव त्यागथी,
करवी जसु परतीत हो मित्त--क्युं०॥१।
परमातम परमेशरु,
वस्तुगते ते अलिप्त हो मित्त;
द्रव्ये द्रव्ये मले नहि,
भावे ते अन्य अव्याप्त हो मित्त--क्युं०॥२।
शुद्ध स्वरुप सनातनो,
निर्मल जे निःसंग हो मित्त;
आतम विभूति परिणम्यो,
न करे ते पर संग हो मित्त--क्युं०॥३।
पण जाणुं आगम बले,
मिलवुं तुम प्रभु साथ हो मित्त;

प्रभु तो स्वसंपत्तिमयी,
शुद्ध स्वरुपनो नाथ हो मित्त--क्युं०॥४॥
पर परिणामिकता अछे,
जे तुज पुद्गल योग हो मित्त;
जड़ चल जगनी एठनो,
न घटे तुजने भोग हो मित्त--क्युं०॥५॥
शुद्ध निमित्ती प्रभु ग्रहो,
करी अशुद्ध पर हेय हो मित्त;
आतमालंबी गुण लयी,
सहु साधकनो ध्येय हो मित्त--क्युं०॥६॥
जिम जिनवर आलंबने,
वधे सधे एक तान हो मित्त;
तेम तेम आतमालंबनी,
ग्रहे स्वरुप निदान हो मित्त--क्युं०॥७॥
स्व स्वरुप एकत्वता,
साधे पूर्णानंद हो मित्त;

रमे भोगवे आतमा,
रत्नत्रयी गुणवृंद हो मित्त--क्युं०॥८॥
अभिनंदन अवलंबने,
परमानंद विलास हो मित्त;
'देवचन्द्र' प्रभु सेवना,
करो अनुभव अभ्यास हो मित्त--क्युं०॥९॥

५-श्री सुमतिनाथजिन-स्तवन.

(कडखानी, देशी)

अहो! श्री सुमति जिन! शुद्धता ताहरी,
स्वगुण पर्याय परिणामरामो;
नित्यता एकता अस्तिता इतरयुत,
भोग्य भोगी थको प्रभु अकामी-अहो०॥१॥
ऊपजे व्यय लहे तहवी तेहवो रहे,
गुण प्रमुख बहुलता तहवी पिंडी;
आत्मभावे रहे अपरता नवि ग्रहे,
लोक प्रदेश मित पण अखंडी-अहो०॥२॥

कार्य कारणपणे प्रणमे तहवी ध्रुव,
कार्य भेदें करे पण अभेदी;
कर्तृता परिणमे नव्यता नवि रमे,
सकल वेत्ता थको पण अवेदी-अहो०॥३॥

शुद्धता बुद्धता देव परमात्मता,
सहज निज भावभोगी अजोगी;
स्वपर उपयोगी तादात्म्य सत्तारसी,
शक्ति प्रयुंज्तो न प्रयोगी- अहो०॥४॥

वस्तु निज परिणते सर्व परिणामको,
पटले कोइ प्रभुता न पामे;
करे जाणे रमे अनुभवे ते प्रभु,
तत्त्वस्वामित्व शुचितत्त्व धामे-अहो०॥५॥

जीव नवि पुग्गली नैव पुग्गल कदा,
पुग्गलाधार नहीं तास रंगी;
परतणो ईश नहिं अपर ऐश्वर्यता,
वस्तु धर्मे कदा न पर संगी-अहो०॥६॥

संग्रहे नहीं आपे नहीं पर भणी,
नवि करे आदरे न पर राखे;
शुद्ध स्याद्वाद निज भाव भोगी जिके,
तेह पर भावने केम चाखे- अहो०॥७॥

ताहरी शुद्धता भास आश्चर्यथी,
उपजे रुचि तेणे तत्त्व ईहे;
तत्त्वरंगी थयो दोषथी उभग्यो,
दोष त्यागे ढले तत्त्व लीहे- अहो०॥८॥

शुद्ध मार्गे वध्यो साध्य साधन सध्यो,
स्वामि-प्रतिछंदे सत्ता आराधे;
आतम निष्पत्ति तेम साधना नवि टके,
वस्तु उत्सर्ग आतम समाधे-अहो०॥९॥

माहरी शुद्ध सत्तातणी पूर्णता,
तेहनो हेतु प्रभु तुंही साचो;
'देवचंदे' स्तव्यो मुनि गुणे अनुभव्यो,
तत्व भक्तें भविक सकल राचो-अहो०॥१०॥

६-श्रीपद्मप्रभु जिन-स्तवन

(तर्ज-हुं तुज आगळ शी कहुं केशरिया लाल)

श्रीपद्मप्रभ जिन गुणनिधि रे लाल,
जगतारक जगदीश रे वालेसर;
जिन उपगारथको लहे रे लाल,
भविजन सिद्धि जगीश रे वालेसर-॥१॥

तुज दरिसण मुज वाहलो रे लाल,
दरिशण शुद्ध पवित्त रे वालेसर;
दरिशण शब्द नयें तरे रे लाल,
संग्रह एवंभूत रे वालेसर- तुज. ॥२॥

बीजें वृक्ष अनंतता रे लाल,
पसरे भूजल योग रे वालेसर;
तिम मुज आतम संपदा रे लाल,
प्रगटे प्रभु संयोग रे वालेसर-तुज. ॥३॥

जगत जंतु कारज रुचि रे लाल,
साधे उदये भाण रे वालेसर;

चिदानंद सुविलासता रे लाल,
वाधे जिनवर ध्यान रे वालेसर-तुज.॥४॥
लब्धि सिद्धि मंत्राक्षरें रे लाल,
उपजे साधक संग रे वालेसर;
सहज अध्यातम तत्त्वता रे लाल,
प्रगटे तत्त्वी रंग रे वालेसर-तुज. ॥५॥
लोह धातु कांचन हुवे रे लाल,
पारस फरसन पामी रे वालेसर;
प्रगटे अध्यातम दशा रे लाल
व्यक्त गुणी गुण ग्राम रे वालेसर-तुज.॥६॥
आतमसिद्धि कारज भणी रे लाल,
सहज निर्यामक हेतु रे वालेसर;
नामादिक जिनराजनां रे लाल;
भवसागर मांहे सेतु रे वालेसर॥तुज.॥७॥
स्तंभन इंद्रिय योगनो रे लाल,
रक्तवर्ण गुण राय रे वालेसर;

'देवचंद्र' वृदे स्तव्यो रे लाल,
आप अवर्ण अकायरे वालेसर० तुज. ८

७–श्री सुपार्श्व जिन–स्तवन

(तर्ज–हो तप सरीखुं जगको नहीं)

श्री सुपास आनंदमें,
गुण अनंतनो कंद हो जिनजी;
ज्ञानानंदे पूरणो,
पवित्र चारित्रानंद हो जिनजी–श्री०॥१॥

संरक्षण विण नाथ छो,
द्रव्य विना धनवंत हो जिनजी,
कर्त्ता पद किरिया विना,
संत अजेय अनंत हो जि– श्री०॥२॥

अगम अगोचर अमर तुं,
अन्वय ऋद्धि समूह हो जिनजी.
वर्ण गंध रस फरस विणु,
निज भोक्ता गुण व्यूह हो जि.–श्री०॥३॥

अक्षय दान अचिंतना,
लाभ अयत्ने भोग हो जिनजी;
वीर्य शक्ति अप्रयासता,
शुद्ध स्वगुण उपभोगे हो जि.-श्री०॥४

एकांतिक आत्यंतिको,
सहज अकृत स्वाधीन हो जिनजी;
निरुपचरित निर्द्वंद्व सुख,
अन्य अहेतुक पीन हो जि.- श्री०॥५

एक प्रदेशें ताहरे,
अव्याबाध समाय हो जिनजी.
तस्स पर्याय अविभागता,
सर्वाकाश न माय हो जि.- श्री०॥६

एम अनंत गुणनो धणी,
गुण गुणनो आनंद जिनजी.
भोग रमण आस्वादयुत,
प्रभु तुं परमानंद हो जि.- श्री०॥७

अव्याबाध रुचि थइ,
साधे अव्याबाध हो जिनजी;
'देवचंद्र' पद ते लहे,
परमानंद समाध हो जि.- श्री०॥८॥

८—श्रीचंद्रप्रभ जिन—स्तवन

(तर्ज-श्री श्रेयांस जिन अंतरजामी)

श्री चंद्रप्रभ जिनपद सेवा,
हेवायें जे हालियाजी,
आतम गुण अनुभवथी मलिया,
ते भव भयथी टलियाजी-श्रीचंद्र०॥१॥

द्रव्य सेव (वा) वंदन नमनादिक,
अर्चन वली गुणग्रामोजी;
भाव अभेद थवानी ईहा,
पर भावे निःकामोजी- श्रीचंद्र०॥२॥

भावसेव (वा) अपवादे नैगम,
प्रभु गुणने संकल्पेंजी;
संग्रह सता तुल्यारोपे,
भेदाभेद विकल्पेजी- श्रीचंद्र०॥३॥

व्यवहारे बहुमान ज्ञान निज,
चरणे जिन गुण रमणाजी;
प्रभुगुण आलंबी परिणामें,
ऋजुपद ध्यान स्मरणाजी- श्रीचंद्र०॥४॥

शब्दे शुक्ल ध्यानारोहण,
समभिरुढ गुण दशमें जी;
बीय शुक्ल अविकल्प एकत्वे,
एवंभूत ते अममें जी- श्रीचंद्र०॥५॥

उत्सर्गें समकित गुण प्रगट्यो,
नैगम प्रभुता अंशेजी;
संग्रह आतम सत्तालंबी,
मुनिपद भाव प्रशंसेजी- श्रीचंद्र०॥६॥

ऋजुसूत्रे जे श्रेणि पदस्थें,
आतम शक्ति प्रकाशेजी;
यथाख्यात पद शब्द स्वरुपे,
शुद्ध धर्म उल्लासेजी- श्रीचंद्र०॥७॥

भाव सयोगी अयोगी शैलेशे,
अंतिम दुग नय जाणोजी;
साधनताए निज गुण व्यक्ति,
तेह सेवना वखाणोजी- श्रीचंद्र०॥८॥

कारण भाव तेह अपवादे,
कार्यरुप उत्सर्गेजी;
आतमभाव ते भावद्रव्य पद,
वाह्य प्रवृत्ति निसर्गेजी- श्रीचंद्र०॥९॥

कारणभाव परंपर सेवन,
प्रगटे कारज भावोजी;
कारज सिद्धे कारणता व्यय,
शुचि परिणामिक भावोजी-श्रीचंद्र०॥१०॥

परम गुणी सेवन तन्मयता,
निश्चय ध्याने ध्यावेजी;
शुद्धितम अनुभव आस्वादी,
'देवचंद्र' पद पावेजी- श्रीचंद्र०॥११॥

९—श्रीसुविधि जिन—स्तवन

(तर्ज—थारा महेलां उपर मेह जरुखे बीजळी हो लाल)

दीठो सुविधि जिणंद,
समाधिरसें भर्यो हो लाल; समा०
भास्यो आतमस्वरुप,
अनादिनो विसर्यो हो लाल; अना०
सकल विभाग उपाधि,
थकी मन ओसर्यो हो लाल; थको०
सत्ता साधन मार्ग,
भणी ए संचर्यो हो लाल. भणी०॥१॥
तुम प्रभु जाणग रीतें,
सर्व जग देखता हो लाल; सर्व०

निज सत्ताए शुद्ध,
　　सहुने लेखता हो लाल; सहुने०
पर परिणति अद्वेष,
　　पणे उवेखता हो लाल. पणे०
भोग्यपणे निज शक्ति,
　　अनंत गवेखता हो लाल. अनंत०॥२॥

दानादिक निज भाव,
　　हता जे परवशा हो लाल; हता०
ते निज सन्मुख भाव,
　　ग्रही लही तुज दशा हो लाल, ग्रही०
प्रभुनो अद्भुत योग,
　　स्वरूपतणो रसा हो लाल; स्वरूप०
भासे वासे तास,
　　जास गुण तुज जिसा हो लाल. जास०॥३॥

मोहादिकनी घुमि,
　　अनादिनो ऊतरे हो लाल; अनादिनो०

अमल अखंड अलिप्त,
स्वभाव ज सांभरे हो लाल; स्वभाव०
तत्वरमण शुचि ध्यान,
भणी जे आदरे हो लाल; भणी०
ते समतारस धाम,
स्वामी मुद्रा वरे हो लाल. स्वामी०॥४॥

प्रभु छो त्रिभुवननाथ,
दास हुं ताहरो हो लाल; दास०
करुणानिधि अभिलाष,
अछे मुज ए खरो हो लाल; अछे०
आतम वस्तु स्वभाव,
सदा मुज सांभरो हो लाल; सदा०
भासन वासन एह,
चरण ध्याने धरो हो लाल. चरण०॥५॥

प्रभु मुद्रानो योग,
प्रभु प्रभुता लखे हो लाल, प्रभु०

द्रव्यतणे साधर्म्य,
स्वसंपत्ति ओलेखे हो लाल; स्व०

ओलखतां बहुमान,
सहित रुचि पण वधे हो लाल, सहित०

रुचि अनुयायी वीर्य,
चरणधारा सधे हो लाल, चरण०॥६॥

क्षायोपशमिक गुण सर्व,
थया तुज गुणरसी हो लाल; थया०

सत्ता साधन शक्ति,
व्यक्तता उल्लसी हो लाल; व्यक्तता०

हवे संपूरण सिद्धि,
तणी शी वार छे हो लाल; तणी०

'देवचंद्र' जिनराज,
जगत आधार छे हो लाल. जगत०॥७॥

१०—श्रीशीतल जिन-स्तवन

(तर्ज-आदर जीव क्षमा गुण आदर)

शीतल जिनपति प्रभुता प्रभुनी,
मुजथी कहीय न जाय जी;
अनंतता निर्मलता पूर्णता,
ज्ञान विना न जणाय जी- शीतल०॥१॥

चरम-जलधि जल मिणे अंजलि,
गति झीपे अति वायजी;
सर्व आकाश ओलंघे चरणे,
पण प्रभुता न गणाय जी-शीतल०॥२॥

सर्व द्रव्य प्रदेश अनंता,
तेहथी गुण पर्याय जी;
तास वर्गथी अनंतगणुं प्रभु,
केवल ज्ञान कहाय जी- शीतल०॥३॥

केवल दर्शन एम अनंतु,
  ग्रहे सामान्य स्वभाव जी;
स्वपर अनंतथी चरण अनंतु,
  स्मरण संवर भाव जी- शीतल०॥४॥

द्रव्य क्षेत्र ने काल भाव गुण,
  राजनीति ए चार जी;
त्रास विना जड़ चेतन प्रभुनी,
  कोइ न लोपे कार जी- शीतल०॥५॥

शुद्धाशय थिर प्रभु उपयोगे,
  जे समरे तुज नाम जी;
अव्याबाध अनंतु पामे,
  परम अमृत सुखधाम जी- शीतल०॥६॥

आणा ईश्वरता निर्भयता,
  निर्वाछकता रुप जी;
भाव स्वाधीन ते अव्यय रीते,
  एम अनंत गुण भूप जी- शीतल०॥७॥

अव्याबाध सुख निर्मल ते तो,
करण ज्ञाने न जणाय जी;
तेहज एहनो जाणग भोक्ता,
जे तुम सम गुणराय जी- शीतल०॥८॥

एम अनंत दानादिक निज गुण,
वचनातीत पंडूर जी;
वासन भासन भावे दुर्लभ,
प्राप्ति तो अति दूर जी- शीतल०॥९॥

सकल प्रत्यक्षपणे त्रिभुवन गुरु,
जाणुं तुज गुणग्राम जी;
बीजुं कांइ न मागुं स्वामी
एहि ज छे मुज काम जी- शीतल०॥१०॥

एम अनंता प्रभुता सर्द्दहतां,
अर्चे जे प्रभु रुप जी;
'देवचंद्र' प्रभुता ते पामे,
परमानंद स्वरुप जी- शीतल०॥११॥

११—श्री श्रेयांस जिन-स्तवन

(तर्ज-प्राणी वाणी जिनतणी)

श्री श्रेयांस प्रभु तणो.
अति अद्भुत सहजानंद रे;
गुण एक विध त्रिक परिणम्यो,
एम गुण अनंतनो वृंद रे;
मुनि चंद जिणंद अमंद दिणंद परे,
नित्य दीपतो सुखकंद रे— ॥१॥

निज ज्ञाने करी ज्ञेयनो,
ज्ञायक ज्ञाता पद ईश रे;
देखे निज दर्शन करी,
निज दृश्य सामान्य जगीश रे-मुनि०॥२॥

निज रम्ये रमण करो,
प्रभु चारित्रे रमता राम रे;
भोग्य अनंतने भोगावो,
भोगे तेणे भोक्ता स्वाम रे- मुनि०॥३॥

देय दान नित्य दीजते,
आत दाता प्रभु स्वयमेव रे;
पात्र तुमे निज शक्तिना,
ग्राहक व्यापकमय देव रे- मुनि०॥४॥

परिणामी कारज तणो,
कर्ता गुण करणे नाथ रे;
अक्रिय अक्षर स्थितिमयी,
निकलंक अनंती आथ रे- मुनि०॥५॥

पारणामिक सत्ता तणो,
आविर्भाव विलास निवास रे;
सहज अकृत्रिम अपराश्रयी,
निर्विकल्प ने निःप्रयास रे- मुनि०॥६॥

प्रभु प्रभुता संभारतां,
गाता करतां गुण ग्राम रे-
सेवक साधनता वरे,
निज संवर परिणति पाम रे-मुनि०॥७॥

प्रगट तत्त्वता ध्यावतां,
निज तत्त्वनो ध्याता थाय रे;
तत्त्वरमण एकाग्रता;
पूरण तत्त्वे एह समाय रे- मुनि०॥८॥
प्रभु दीठे मुज सांभरे,
परमातम पूर्णानंद रे;
'देवचंद्र' जिनराजना,
नित्य वंदो पद अरविंद रे-मुनि०॥९॥

१२—श्री वासुपूज्य जिन-स्तवन

(तर्ज-पंथड़ो निहालुं रे बीजा जिन तणो रे)

पूजना तो कीजे रे बारमा जिनतणी रे,
जसु पगटयो पूज्य स्वभाव;
परकृत पूजा रे जे इच्छे नहि रे,
साधत कारज दाव— पूजना०॥१॥
द्रव्यथी पूजा रे कारण भावनुं रे,
भाव प्रशस्त ने शुद्ध;

परम इष्ट वल्लभ त्रिभुवन धणी रे,
    वासुपूज्य स्वयंबुद्ध— पूजना०॥२॥
अतिशय महिमा रे अति उपकारता रे,
    निर्मळ प्रभु गुण राग;
सुरमणि सुरघट सुरतरु तुच्छ ते रे,
    जिनरागी महाभाग— पूजना०॥३॥
दर्शन ज्ञानादिक गुण आतमना रे,
    प्रभु प्रभुता लयलीन;
शुद्ध स्वरुपी रुपे तन्मयी रे,
    तसु आस्वादन पीन— पूजना०॥४॥
शुद्ध तत्त्व रस रंगी चेतना रे,
    पामें आतम स्वभाव;
आत्मालंबी निज गुण साधतो रे,
    प्रगटे पूज्य स्वभाव— पूजना० ॥५॥
आप अकर्त्ता शेवाथी हुवे रे,
    सेवक पूरण सिद्धि;

निज धन न दीये पण आश्रित लहे रे,
अक्षय अक्षर ऋद्धि— पूजना० ॥६॥
जिनवर पूजा रे निज पूजना रे,
प्रगटे अन्वय शक्ति,
परमानंद विलासी अनुभवे रे,
'देवचंद्र' पद व्यक्ति— पूजना० ॥७॥

१३–श्री विमल जिन–स्तवन

(तर्ज–दास अरदास शी पेरे करे जी)

विमल जिन विमलता ताहरी जी,
अवर बीजे न कहाय;
लघु नदी जिम तिम लंघीए जी,
स्वयंभूरमण न तराय— विमल० ॥१॥
सयल पुढवी गिरि जल तरु जी,
कोइ तोले एक हत्थ;
तेह पण तुज गुणगण भणी जी,
भाखवा नहि समरथ— विमल० ॥२॥

सर्व पुद्गल नभ धर्मना जी,
तेम अधर्म प्रदेश;
तास गुण धर्म पज्जव सहु जी,
तुज गुण एकतणो लेश—विमल० ॥३॥

एम निज भाव अनंतनी जी,
अस्तिता केटली थाय;
नास्तिता स्वपर पद अस्तिता जी,
तुज सम काल समाय—विमल० ॥४॥

ताहरा शुद्ध स्वभावने जी,
आदरे धरी बहु मान;
तेहने तेहि ज नीपजे जी,
ए कोइ अद्भुत तान— विमल० ॥५॥

तुम प्रभु तुम तारक विभू जी,
तुम समो अवर न कोय;
तुम दरिसण थकी हुं तर्यो जी,
शुद्ध आलंबन होय— विमल० ॥६॥

प्रभुतणी विमलता ओलखो जी,
जे करे स्थिर मन सेव;
'देवचंद्र' पद ते लहे जी,
विमल आनंद स्वयमेव—विमल० ॥७॥

१४–श्री अनंतजिन–स्तवन

(तर्ज–दीठी हो प्रभु दीठी जगगुरु तुज)

मूरति हो प्रभु ! मूरति अनंत जिणंद,
ताहरी हो प्रभु ! ताहरी मुज नयणे वसो जी,
समता हो प्रभु ! समता रसनो कंद,
सहेजे हो प्रभु ! सहेजे अनुभव रस लसी जी. ॥१॥
भवदव हो प्रभु ! भवदव तापित जीव,
तेहने हो प्रभु ! तेहने अमृत घन समी जी;
मिथ्या विष हो प्रभु ! मिथ्या विषनी खीव,
हरवा हो प्रभु ! हरवा जांगुलि मन रमी जी. ॥२॥
भाव हो प्रभु ! भाव चिंतामणि एह,
आतम हो प्रभु ! आतम संपत्ति आपवा जी;

सहिज हो प्रभु ! सहिज शिव सुख गेह,
तत्त्व हो प्रभु ! तत्त्वालंबन थापवा जी. ॥३॥

जाये हो प्रभु ! जाये आश्रव चाल,
दीठे हो प्रभु ! दीठे संवर वधे जी;
रत्न हो प्रभु ! रत्नत्रयी गुणमाल,
अध्यातम हो प्रभु ! अध्यातम साधन साधे जी ४

मीठी हो प्रभु ! मीठी सूरत तुज,
दीठी हो प्रभु ! दीठी रुचि बहु मानथी जी;
तुज गुण हो प्रभु ! तुज गुण भासन युक्त,
सेवे हो प्रभु ! सेवे तसु भव भय नथी जी. ॥५॥

नामे हो प्रभु ! नामे अद्भूत रंग,
ठवणा हो प्रभु ! ठणवा दीठे उल्लसे जी;
गुण आस्वाद हो प्रभु ! गुण आस्वाद अभंग,
तन्मय हो प्रभु ! तन्मयताए जे धसे जी. ॥६॥

गुण तनंत हो प्रभु ! गुण अनंतनो वृंद,
नाथ हो प्रभु ! नाथ अनंतने आदरे जी;

'देवचंद्र' हो प्रभु ! देवचंद्र आनंद,
परम हो प्रभु ! परम महोदय ते वरे जी. ॥७॥

१५–श्री धर्मनाथजिन–स्तवन

(तर्ज–सफल संसार अवतार ए हुं गणुं)

धर्म जगनाथनो धर्म शुचि गाइए,
आपणो आतमा तेहवो भावीए;
जाति जसु एकता तेह पलटे नहिं,
शुद्ध गुण पज्जवा वस्तु सत्तामयी. ॥१॥

नित्य निरवयव वली एक अक्रियपणे,
सर्वगत तेह सामान्य भावे भणे;
तेहथी इतर सावयव विशेषता,
व्यक्ति भेदे पडे जेहनी भेदता. ॥२॥

एकता पिंड ने नित्य अविनाशता,
अस्ति निज ऋद्धथी कार्यगत भेदता,
भावश्रुत गम्य अभिलाप्य अनंतता,
भव्य पर्यायनी जे परावर्तिता. ॥३॥

क्षेत्र गुण भाव अविभाग अनेकता,
नाश उत्पाद अनित्य पर नास्तितता;
क्षेत्र व्याप्यत्व अभेद अवक्तव्यता,
वस्तु ते रुपथी नियत अभव्यता. ॥४॥

धर्म प्रागूभावता सकल गुण शुद्धता,
भोग्यता कर्तृता रमण परिणामता;
शुद्ध स्वप्रदेशता तत्व चैतन्यता,
व्याप्य व्यापक तथा ग्राह्य ग्राहकता ॥५॥

संग परिहारथी स्वामी! निज पद लह्युं,
शुद्ध आत्मिक आनंद पद संग्रह्यु;
जहना पर भावथी हुं भवोदधि वस्यो;
परतणो संग संसारताए ग्रस्यो. ॥६॥

तहवी सत्ता गुणे जीव ए निर्मलो;
अन्य संश्लेष जिम स्फटिक नवि सामलो;
जे परोपाधिथी दुष्ट परिणति ग्रही,
भाव तादात्म्यमां माहरुं ते नहीं. ॥७॥

तिणे परमात्म प्रभु भक्ति रंगी थइ,
शुद्ध कारण रसे तत्त्व परिणतिमयी;
आत्म ग्राहक थये तजे पर ग्रहणता,
तत्त्वभोगी थये टळे पर भोग्यता. ॥८॥
शुद्ध निःप्रयास निज भाव भोगी यदा,
आत्मक्षेत्र नहिं अन्य रक्षण तदा;
एक असहाय निस्संग निर्द्वंद्वता,
शक्ति उत्सर्गनी होय सहु व्यक्तता. ॥९॥
तेणे मुज आतमा तुजथकी नीपजे,
माहरी संपदा सकल मुज संपजे;
तेणे मन-मंदिरे धर्म प्रभु ध्याइयें,
परम 'देवचंद्र' निज सिद्धि सुख पाइयें. ॥१०॥

१६-श्री शांतिनाथजिन-स्तवन

(तर्ज-आंखडिये मैं आज शत्रुंजय दीठो रे)

जगत दिवाकर जगत कृपानिधि,
वहालो मारो समवसरणमां बेठा रे;

चउमुख चउविह धर्म प्रकाशे,
ते में नयणे दीठां रे.
भविकजन ! हरखोरे. निरखी शांति जिणंद-भ०
उपशम रसनो कंद, नहीं इण सरखो रे १

प्रातिहार्य अतिशय शोभा,
भ० ते तो कहीय न जावे रे;
घुक बालकथी रविकरभरनुं,
वर्णन केणी परे थावे रे—भविक० ॥२॥

वाणी गुण पांतीश अनुपम,
भ० अविसंवाद स्वरुपे रे;
भवदुःख वारण शिवसुख कारण,
सुधो धर्म प्ररुपे रे—भविक० ॥३॥

दक्षिण पश्चिम उत्तर दिसि मुख,
भ० ठवणा जिन उपकारी रे;
तसु आलंबन लहिये अनेके,
तिहां थया समकित धारी रे—भविक० ॥४॥

षट नय कारज रूपे पठणा;
व० सग (सत्त) नय कारण ठाणी रे;
निमित्त समान थापनाजिनजी,
ए आगमनी वाणी रे— भविक० ॥५॥

साधक तीन निक्षेपा मुख्य,
व० जे विणु भाव न लहिये रे;
उपकारी दुग भाष्ये भाख्या,
भाव वंदकनो ग्रहिये रे—भविक० ॥६॥

ठवणा समवसरणे जिनसेति,
व० जो अभेदता वाधी रे,
ए आत्मना स्व स्वभाव गुण,
व्यक्त योग्यता साधो रे.—भविक० ॥७॥

भलुं थयुं में प्रभु गुण गाया,
व० रसनानो फल लीधो रे;
'देवचंद्र' कहे महारा मननो,
सकल मकोरथ सीधो रे—भविक० ॥८॥

१७–श्रीकुंथुनाथजिन–स्तवन

(तर्ज–चरम जिणेसरु)

समवसरण बेसी करीरे,
बारह परिषद् मांहे;
वस्तु स्वरुप प्रकाशता रे,
करुणार जगनाहो रे– कुंथु जिनेश्वरु•॥१॥
नर्मल तुज मुख वाणी रे, जे श्रवणे सुणे;
तेहि ज गुणमणि खाणी रे कुंथु जिने०॥२॥
गुण पर्याय अनंतता रे.
वली य स्वभाव अगाह;
नय गम भंग निक्षेपना रे.
हेयादेय प्रवाहो रे—कुंथु जिने०॥३॥
कुंथुनाथ प्रभु देशना रे,
साधन साधन साधक सिद्ध;
गौण मुख्यता वचनमां रे,
ज्ञान ते सकल समृद्धो रे–कुंथु जिने०॥४॥

वस्तु अनंत स्वभाव छे रे,
अनंत कथक तसु नाम;
ग्राहक अवसर बोधथी रे,
कहेवे अर्पित कामो रे-कुंथु जिने०॥५॥

शेष अनर्पित धर्मने रे,
सापेक्ष श्रद्धा बोध;
उभय रहित भासन होवे रे,
प्रगटे केवल बोधो रे-कुंथु जिने०॥६॥

छति परिणात गुण वर्त्तना रे,
भासन भोग आनंद;
सम काले प्रभु ताहरे रे,
रम्य रमण गुण वृंदो रे-कुंथु जिने०॥७॥

निज भावे सीव अस्तितारे,
पर नास्तित्व स्वभाव;
अस्तिपणे ते नास्तिता रे;
सीय ते उभय स्वभावो रे-कुंथु जिने०॥८॥

अस्ति स्वभाव जे आपणो रे,
रुचि वैराग्य समेत;
प्रभु सन्मुख वंदन करी रे,
मागीश आतम हेतो रे-कुंथु जिने०॥९॥
अस्ति स्वभाव रुचि थइ रे,
ध्यातो अस्ति स्वभाव;
'देवचंद्र' पद ते लहे रे,
परमानंद जमावो रे-कुंथु जिनेश्वर.॥१०॥

१८-श्री अरनाथजिन-स्तवन

(तर्ज-रामचंद्रके बाग चंपो मोह रह्यो री)

प्रणमो श्रीअरनाथ, शिवपुर साथ खरो री;
त्रिभुवन जन आधार, भव निस्तार करो री—१
कर्त्ता कारण योग, कारज सिद्धि लहे री;
कारण चार अनुप, कार्यार्थी तेह ग्रहे री—२
जे कारण ते कार्य, थाये पूर्ण पदे री;
उपादान ते हेतु, माटी घट ते वदे री—३

उपादानथी भिन्न, जे विणु कार्य न थाये;
न हुवे कारज रुप, कर्त्ताने व्यवसाये—४
कारण तेह निमित्त, चक्रादिक घट भावे;
कार्य तथा समवाय, कारण नियतने दावे—५

वस्तु अभेद स्वरुप, कार्यपणुं न ग्रहे री;
ते असाधारण हेतु कुंभे थास लहे री—६
जेहनो नवि व्यापार, भिन्न नियत बहु भावी;
भूमि काल आकाश. घट कारण सद्भावी—७

एह अपेक्षा हेतु, आगम मांहि कह्यो री;
कारण पद उत्पन्न, कार्य थये न लह्यो री—८
कर्त्ता आतम द्रव्य, कार्य सिद्धिपणो री;
निज सत्तागत धर्म, ते उपादान गणो री—९

योग समाधि विधान, असाधारण तेह वदे री;
विधि आचरणा भक्ति, जिणे निज कार्य सधे री १०
नरगति पढम संघयण, तेह अपेक्षा जाणो
निमित्ताश्रित उपादान, तेहने लेखे आणो-११

निमित्त हेतु जिनराज, समता अमृत खाणी
प्रभु अवलंबन सिद्धि, नियमा एह वखाणी-१२
पुष्ट हेतु अरनाथ, तेहने गुणथी हळीए;
रीझ भक्ति बहुमान, भोग ध्यानथी मलीए-१३
मोटाने उत्संग, बेठाने शी चिंता ?
तिम प्रभु चरण पसाय, सेवक थया निचिंता-१४
अर प्रभु पभुता रंग, अंतर शक्ति विकासी,
'देवचंद्र'ने आनंद, अक्षय भोगविलासी--१५

१९–श्री मल्लिनाथजिन–स्तवन

(तर्ज-देखी कामनी दोयके कामे व्यापियोरे केका०)

मल्लिनाथ जगनाथ, चरण युग ध्याइए रे-च०
शुद्धातम प्रागभाव, परमपद पाइए रे-प०;
साधक कारक षटक, करे गुण साधना रे-क०
तेवीज शुद्ध स्वरुप, थाय निराबाधना रे-था०१
कर्त्ता आतमद्रव्य, कार्य निज सिद्धता रे-का०
उपादान परिणाम, प्रयुक्त ते करणता रे-प्र०

आतम संपद दान, तेह संप्रदानता रे-ते०
दाता पात्र ने देय, त्रिभाव अभेदता रे-त्रि० २
स्वपर विवेचन करण, तेह अपादानथी रे-ते०
सकल पर्याय आधार, संबंध आस्थानथी रे-स०
बाधक कारक भाव, अनादि निवारवा रे-अ०
साधकता अवलंबी, तेह समारवा रे- ते०॥३॥
शुद्धपणे पर्याय, प्रवर्त्तन कार्यमें रे, प्र०
कर्त्तादिक परिणाम, ते आतम धर्ममें रे-ते०
चेतन चेतन भाव, करे समवेतमें रे-क०
सादि अनंतो काल, रहे निजखेतमें रे-रहे०॥४॥
पर कर्तृत्व स्वभाव, करे तां लगी करे रे क०
शुद्ध कार्य रुचि भास, थये नवि आदरे रे-थ०
शुद्धातम निज कार्य, रुचे कारक फिरे रे-रु०
तेहि ज मूल स्वभाव ग्रहे निजपद वरे रे-ग्र० ५
कारण कारजरुप, अछे कारक दशा रे-अ०
पण शुद्ध स्वरुप ध्यान, ते चेतनता ग्रहे रे-ते०
तव निज साधक भाव, सकल कारक लहे रे-स०६

माहरुं पूर्णानंद, प्रगट करवा भणी रे—प्र०
पुष्टालंबन रूप, सेव (वा) प्रभुजी तणी रे-से०
'देवचंद्र' जिनचंद्र, भक्ति मनमें धरो रे-भ०
अव्याबाध अनंत, अक्षयपद आदरो रे-अ०-७

२०—श्री मुनिसुव्रतजिन—स्तवन.

(तर्ज-ओलंगड़ी ओलंगड़ी सुहेली हो श्री श्रेयांसनी)

ओलंगडी ओलंगडी तो कीजे
श्री मुनिसुव्रत स्वामीनो रे,
जेहथी निज पद सिद्धि;
केवल केवल ज्ञानादिक गुण उल्लसे रे,
लहीए सहज समृद्धि— ओ० ॥१॥
उपादान उपादान निज परिणति वस्तुनी रे,
पण कारण निमित्त आधीन;
पुष्ट अपुष्ट दुविध ते उपदिश्यो रे,
ग्राहक विधि आधीन— ओ० ॥२॥
साध्य साध्य धर्म जे माहे होवे रे,
ते निमित्त अति पुष्ट;

पुष्प पुष्पमांहे तिल वासक वासना रे,
नवि प्रध्वंसक हुइ —ओ०॥३॥

दंड दंड निमित्त अपुष्ट घड़ा तणो रे,
नवि घटता तसुमांय;
साधक साधक प्रध्वंसता अछे रे,
तिणे नहि नियत प्रवाह— ओ०॥४॥

षट्कारक षट्कारक ते कारण कार्यनुं रे,
जे कारण स्वाधीन;
ते कर्त्ता ते कर्त्ता सहु कारक ते वहु रे,
कर्म ते कारण पीन— ओ०॥५॥

काय कार्य संकल्पे कारण दशा रे,
छती सत्ता सद्‌भाव;
अथवा अथवा तुल्य धर्मने जोयवे रे,
साध्यारोपण दाव— ओ०॥६॥

अतिशय अतिशय कारण कारक करणता रे,
निमित्त अने उपादान;

संप्रदान संप्रदान कारण पद भव नथी रे,
कारण व्यय अपादान- ओ०॥७॥

भवन भवन व्यय विणु कारज नहि हुवे रे,
जेम दृषदे न घटत्व;
शुद्धाधार शुद्धाधार स्वगुणनो द्रव्य छे रे,
सत्ताधार सुतत्त्व- ओ०॥८॥

आतम आतम कर्ता कारज सिद्धता रे,
तसु साधन जिनराज;
प्रभु दीठे प्रभु दीठे कारज रुचि उपजे रे,
प्रगटे आतम समाज- ओ०॥९॥

वंदन वंदन नमन सेवन वळी पूजना रे,
स्मरण स्तवन वळी ध्यान;
'देवचंद्र' देवचंद्र कीजे जगदीशनुं रे.
प्रगटे पूर्ण निधान- ओ०॥१०॥

२०—श्री मुनिसुव्रतजिन—स्तवन

(तर्ज—पीछोलारे, पाल ऊभा दोय राजवी)

श्री नमि जिनवर सेव(न) घनाघन उनम्यो रे—
दीठां मिथ्या रोर, भविक चित्तथी गम्यो रे—
शुचि आचरणा रीति, ते अभ्र वधे वड़ा रे—
आतम परिणति शुद्ध, ते वीज झबूकड़ा रे—१
वाजे वायु सुवायु, ते पावन भावना रे—
इंद्र धनुष्य त्रिक योग, ते भक्ति एक मना रे—
निर्मल प्रभु स्तव घोष, ध्वनि घन गर्जना रे—
तृष्णा ग्रीष्म काल, तापनी तर्जना रे—२
शुभ लेश्यानी आलि, ते बगपंक्ति बनी रे—
श्रेणी सरोवर हंस, वसे शुचि गुण मुनि रे—
चउगति मारग बंध, भविक निज घर रह्या रे—
चेतन समता संग, रंग में उमह्या रे—३
सम्यगदृष्टि मोर, तिहां हरखे घणुं रे—
देखी अद्भुत रुप, परम जिनवर तणुं रे—

प्रभु गुणनो उपदेश, ते जलधारा वही रे-
धर्मरुचि चित्तभूमि, मांहि निश्चल रही रे-४

चातक श्रमण समूह, करे तब पारणो रे-
अनुभव रस आस्वाद, सकल दुःख वारणो रे-
अशुभाचार निवारण, तृण अंकुरता रे-
विरतितणा परिणाम, ते बीजनी पूरता रे-५

पंच महाव्रत धान्य तणा कर्षण वध्यां रे-
साध्यभाव निज थापी, साधनतायें सध्यां रे-
क्षायिक दर्शन ज्ञान, चरण गुण उपन्यां रे-
आदिक बहु गुण सस्य, आतम घर नोपन्यां रे-६

प्रभु दर्शन महामेह, तणे प्रवेशमें रे-
परमानंद सुभिक्ष, थयो मुज देशमें रे-
'देवचंद्र' जिनचंद्र, तणो अनुभव करो रे-
सादि अनंतोकाल, आतमसुख अनुसरो रे-७

२२—नेमिनाथजिन—स्तवन

(तर्ज—पद्मप्रभ जइ अलगा वस्या)

नेमि जिनेश्वर निज कारज कर्युं,
छोड़्यो सर्व विभावो जी;
आतम शक्ति सकल प्रगट करी,
आस्वाद्यो निज भावो जी- नेमि०॥१॥
राजुल नारी रे सारी मति धरी,
अवलंब्या अरिहंतो जी;
उत्तम संगे रे उत्तमता वधे,
सधे आनंद अनंतो जी- नेमि-॥२॥
धर्म अधर्म आकाश अचेतना,
ते विजाति अग्राह्यो जी;
पुद्गल ग्रहवे रे कर्म कलंकता,
वाधे बाधक बाह्यो जी- नेमि०॥३॥
रागी संगे रे राग दशा वधे,
थाय तिणे संसारो जी;

नीरागीथी रे रागनुं जोडवुं,
    लहीए भवनो पारो जी- नेमि०॥४॥

अप्रशस्तता रे टाली प्रशस्तता,
    करतां आश्रव नाशे जी;
संवर वाधे रे साधे निर्जरा,
    आतमभाव प्रकाशे जी- नेमि०॥५॥

नेमि प्रभु ध्याने रे एकत्वता,
    निज तत्त्वे एक तानो जी;
शुक्ल ध्याने रे साधी सुसिद्धता,
    लहिये मुक्ति निदानो जी- नेमि०॥६॥

अगम अरूपी रे अलख अगोचरु,
    परमातम परमीशो जी;
'देवचंद्र' जिनवरनी सेवना,
    करतां वाधे जगीशो जी- नेमि०॥७॥

२३—श्री श्रीपार्श्वनाथजिन—स्तवन

(तर्ज—कड़खा)

सहज गुण आगरो, स्वामी सुख सागरो,
ज्ञान वैराग्यरो प्रभु सवायो;
शुद्धता एकता, तीक्ष्णता भावथी,
मोह रिपु जीती जय पडह वायो- ॥१॥
वस्तु निज भाव, अविभास निकलंकता,
परिणति वृत्तिता करी अभेदे;
भाव तादात्म्यता, शक्ति उल्लासथी,
संतति योगने तुं उच्छेदे- ॥२॥
दोष गुण वस्तुनी, लखीय यथार्थता,
लही उदासीनता अपर भावे;
ध्वंसी तज्जन्यता, भावकर्त्तापणुं,
परम प्रभु तुं रम्यो निज स्वभावे-॥३॥
शुभ अशुभ भाव, अविभास तहकीकता,
शुभ अशुभ भाव, तिहां प्रभु! न कीधुं;

शुद्ध परिणामता, वीर्य कर्त्ता थइ,
परम अक्रियता अमृत पीधुं- ॥४॥
शुद्धता प्रभुतणी, आत्मभावे रमे,
परम परमात्मा तास थाप;
मिश्रभावे अछे, त्रिगुणनी भिन्नता,
त्रिगुण एकत्व तुज चरण आये- ॥५॥
उपशम रस भरी, सर्व जन शंकरी,
मूर्ति जिनराजनी आज भेटी,
कारणे कार्य निष्पत्ति श्रद्धान छे,
तिणे भवभ्रमणनी भीड़ मेटी- ॥६॥
नयर खंभायते, पार्श्व प्रभु दर्शने,
विकसते हर्ष उत्साह वाध्यो;
हेतु एकत्वता, रमण परिणामथी,
सिद्धि साधकपणो आज साध्यो- ॥७॥
आज कृतपुण्य, धन्य दीह मारो थयो,
आज नर जन्म में सफल भाव्यो;

'देवचंद्र' स्वामी त्रेवीशमो वंदियो,
भक्तिभर चित्त तुज गुण रमाड्यो-॥८॥

७-श्री महावीर जिन-स्तवन

(तर्ज-कड़खा)

तार हो तार प्रभु, मुज सेवक भणी,
जगतमां एटलुं सुजश लीजे;
दास अवगुणभर्यो, जाणी पोता तणो,
दयानिधि दीन पर दया कीजे-तार०॥१॥
राग द्वेष भर्यो, मोह वैरी नड्यो,
लोकनी रीतमां घणुंये रातो,
क्रोधवश धमधम्यो, शुद्ध गुण नवि रम्यो,
भम्यो भवमांहि हुं विषय मातो- ॥२॥
आदर्युं आचरण लोक उपचारथी,
शास्त्र अभ्यास पण कांइ कीधो;
शुद्ध श्रद्धान वली, आतम आलंबन विना,
तेहवो कार्य तिणे को न सिधो- ॥३॥

स्वामी दर्शन समो, निमित्त लही निर्मलो,
जो उपादान ए शुचि न थाशे,
दोष को वस्तुनो, अहवा उद्यम तणो,
स्वामी सेवा सही निकट लाशे-॥४॥

स्वामी गुण ओलखी, स्वामीने जे भजे,
दर्शन शुद्धता तेह पामे;
ज्ञान चारित्र तप, वीर्य उल्लासथी,
कर्म झीपी वसो मुक्ति धामे-॥५॥

जगत वत्सल महावीर जिनवर सुणो,
चित्त प्रभु चरणने शरण वास्यो;
तारजो बापजी विरुद निज राखवा,
दासनी सेवना रखे जोशो-॥६॥

विनति मानजो, शक्ति ए आपजो,
भाव स्याद्वादता शुद्ध भासे;
साधी साधक दशा, सिद्धता अनुभवी,
'देवचंद्र' विमल प्रभुता प्रकाशे-॥७॥

४—श्री सामान्य कलशरूप—स्तवन

(तर्ज—तुज विण गति नहिं जंतुनी)

चोवीशे जिन गुण गाइए,
ध्याइए तत्त्व स्वरुप जी;
परमानंद पद पाइए,
अक्षय ज्ञान अनुपो जी- चो०॥१॥
चौदसें बावन भला,
गणधर गुण भंडारो जी;
समतामयी साहुसाहुणी,
सावय सावया सारो जी- चो०॥२॥
वर्धमान जिनवर तणो,
शासन अति सुखकारो जी;
चउविह संघ विराजतो,
दुषम काल आधारो जी- चो०॥३॥
जिनसेवनथी ज्ञानता,
लहे हिताहित बोधो जी;

अहित त्याग हित आदरे,
संयम तपनो शोधो जी- चो०॥४॥
अभिनव कर्म अग्रहणता,
जीर्ण कर्म अभावो जी;
निःकर्मनि अबाधता,
अवेदन अनाकुल भावो जी- चो०॥५॥
भावरोगना विगमथी,
अचल अक्षय निराबाधो जी;
पूर्णानंद दशा लही,
विलसे सिद्ध समाधो जी- चो०॥६॥
श्री जिनचंद्रनो सेवना,
प्रगटे पुण्य प्रधानो जी;
सुमतिसागर अति उल्लसे,
साधुरंग प्रभु ध्यानो जी- चो०॥७॥
सुविहित खरतर गच्छवरु,
राजसार उवज्झायो जी;

ज्ञानधर्म पाठकतणो,
शिष्य सुजश सुखदायो जी- चो०॥८॥
दीपचंद्र पाठक तणो,
शिष्य स्तवे जिनराजो जी;
'देवचंद्र' पद सेवता,
पूर्णानंद समाजो जी- चो०॥९॥

एकज दे चिणगारी !

एकज दे चिणगारी,
महानल एकज दे चिणगारी. टेर.
चकमक लोढुं घसतां घसतां
खरची जींदगी सारी,
जामगरीमां तणखो न पड्यो,
न फळी महेनत मारी. एकज०
चांदो सळग्यो, सूरज सळग्यो,
सळगी आभ अटारी,

न सळगी एक सगडी दिलमी,
पामुं विपदा भारी. एकज०
ठंडीमां मुज काया थथरे,
खुटे धीरज मारी,
विश्वानल हुं अधिक न मागुं
मागुं एक चिणगारी.
महानल एकज दे चिणगारी.

अमुल्य-तत्व-विचार

(हरीगीत छंद)

बहु पुण्य केरा पुंजथीशुभ देह मानवनो मळ्यो,
तोये अरे भव चक्रनो आंटो नहि एक टळ्यो;
सुख प्राप्त करतां सुख टले छे, लेश ए लक्षे लहो,
क्षण क्षण भयंकर भाव मरणे, कां अहो राची रहो ?
लक्ष्मी अने अधिकार वधतां, शुं वध्युंते तो कहो,
शुं कुटुंब के परिवारथी वधवापणुं ए नय ग्रहो;

वधवापणुं संसारनुं नरदेहने हारी जवो,
एनो विचार नहि अहोहो! एक पल तमने हवो. २

निर्दोष सुख निर्दोष आनंद, ल्यो गमे त्यांथी मले;
ए दिव्य शक्तिमान जेथी, जंजीरेथी नीकले!!
परवस्तुमां नहि मुंझवो, एनी दया मुजने रही,
ए त्यागवां सिद्धांत के पश्चात दुःख ते सुख नहि. ३

हुं कोण छुं! क्यांथी थयो, शुं स्वरुप छे मारुं खरुं
कोना संबंधे वलगणा छे, राखुं के ए परिहरुं;
एना विचार विवेकपूर्वक, शान्त भावे जो कर्या,
तो सर्व आत्मिकज्ञाननां, सिद्धांत तत्वो अनुभव्यां. ४

ते प्राप्त करवा वचन कोनुं, सत्य केवल मानवुं,
निर्दोष नरनुं कथन मानो, तेह जेणे अनुभव्युं;
रे आत्मतारो रे आत्मतारो, शीघ्र एने ओलखो,
सर्वात्ममां समदृष्टि द्यो, आ वचनने हृदये लखो. ५

(राग-बिहाग-तीन ताल)

नाम जपन क्यों छोड़ दिया ?
क्रोध न छोड़ा, झूठ न छोड़ा,
सत्य वचन क्यों छोड़ दिया ॥ध्रु०॥

झूठे जाल में दिल ललचा कर,
असल वतन क्यों छोड़ दिया ?
कोडी को तो खूब सम्हाला लाल,
रतन क्यों छोड़ दिया ? ॥१॥

जहि सुमिरन ते अति सुख पावे,
सो सुमिरन क्यों छोड़ दिया ?
'आलस' इक भगवान् भरोसे,
तन, मन, धन क्यों न छोड़ दिया ? ॥

